दुनिया के मजदूरो, एक हो!

व्ला० इ० लेनिन

कार्ल मार्क्स

*

फ्रेडरिक एंगेल्स

प्रगति प्रकाशन

मास्को

विषय-सूची

कार्ल मार्क्स

(मार्क्सवाद की व्याख्या सहित, एक संक्षिप्त जीवनी)[1]

भूमिका

कार्ल मार्क्स संबंधी मेरा जो लेख इस समय अलग से प्रकाशित हो रहा है, जहां तक मुझे याद है, मैंने उसे १९१३ में ग्रानात विश्वकोष के लिए लिखा था, और मार्क्स से संबंध रखनेवाली पुस्तकों की एक लम्बी सूची लेख के अंत में जोड़ दी थी जिसमें अधिकांश पुस्तकें विदेशी थीं। प्रस्तुत संस्करण में वह सूची छोड़ दी गई है। विश्वकोष के सम्पादकों ने सेंसर की सीमाओं के कारण लेख के अन्त का वह हिस्सा काट दिया था जिसमें मार्क्स की क्रांतिकारी कार्यनीति की व्याख्या थी। दुर्भाग्यवश, मैं वह हिस्सा यहां दुबारा दे सकने की स्थिति में नहीं हूं, क्योंकि लेख की पहिली प्रति मेरे काग़ज़ों में कहीं क्रैको या स्विट्ज़रलैंड में रह गयी है। मुझे केवल इतना याद है कि लेख के इस अन्तिम भाग में, बाकी चीज़ों के साथ मैंने मार्क्स के एक पत्र में से – जो उन्होंने एंगेल्स को १६ अप्रैल १८५६ को लिखा था – एक उद्धरण दिया था, जिसमें उन्होंने कहा था: "किसी दूसरे कृषकयुद्ध द्वारा सर्वहारा क्रान्ति के समर्थन किये जाने की संभावना पर ही जर्मनी में सब कुछ निर्भर है। तब सब बात ठीक बैठेगी।" यह बात है जो हमारे मेन्शेविक – जो अब इस क़दर गिर गये हैं कि समाजवाद से ग़द्दारी पर उतर आये हैं और भाग कर पूंजीवादियों से जा मिले हैं – १९०५ में भी नहीं समझ पाये और न ही उसके बाद ही।

न० लेनिन

मास्को, १४ मई, १९१८

१९१८ में न० लेनिन, 'कार्ल मार्क्स' नामक पुस्तिका में प्रकाशित, 'प्रिबोई' प्रकाशन गृह, मास्को

कार्ल मार्क्स

(मार्क्सवाद की व्याख्या सहित, एक संक्षिप्त जीवनी)[1]

भूमिका

कार्ल मार्क्स संबंधी मेरा जो लेख इस समय अलग से प्रकाशित हो रहा है, जहां तक मुझे याद है, मैंने उसे १९१३ में ग्रानात विश्वकोष के लिए लिखा था, और मार्क्स से संबंध रखनेवाली पुस्तकों की एक लम्बी सूची लेख के अंत में जोड़ दी थी जिसमें अधिकांश पुस्तकें विदेशी थीं। प्रस्तुत संस्करण में वह सूची छोड़ दी गई है। विश्वकोष के सम्पादकों ने सेंसर की सीमाओं के कारण लेख के अन्त का वह हिस्सा काट दिया था जिसमें मार्क्स की क्रांतिकारी कार्यनीति की व्याख्या थी। दुर्भाग्यवश, मैं वह हिस्सा यहां दुबारा दे सकने की स्थिति में नहीं हूं, क्योंकि लेख की पहिली प्रति मेरे कागज़ों में कहीं क्रैको या स्विट्ज़रलैंड में रह गयी है। मुझे केवल इतना याद है कि लेख के इस अन्तिम भाग में, बाकी चीज़ों के साथ मैंने मार्क्स के एक पत्र में से—जो उन्होंने एंगेल्स को १६ अप्रैल १८५६ को लिखा था—एक उद्धरण दिया था, जिसमें उन्होंने कहा था: "किसी दूसरे कृषकयुद्ध द्वारा सर्वहारा क्रान्ति के समर्थन किये जाने की संभावना पर ही जर्मनी में सब कुछ निर्भर है। तब सब बात ठीक बैठेगी।" यह बात है जो हमारे मेन्शेविक—जो अब इस क़दर गिर गये हैं कि समाजवाद से ग़द्दारी पर उतर आये हैं और भाग कर पूंजीवादियों से जा मिले हैं—१९०५ में भी नहीं समझ पाये और न ही उसके बाद ही।

न० लेनिन

मास्को, १४ मई, १९१८

१९१८ में न० लेनिन, 'कार्ल मार्क्स' नामक पुस्तिका में प्रकाशित, 'प्रिबोई' प्रकाशन गृह, मास्को

कार्ल मार्क्स का जन्म ५ मई, १८१८ को त्रियेर नगर (प्रशा के राइन प्रान्त) में हुआ था। उनके पिता एक यहूदी वकील थे जिन्होंने १८२४ में प्रोटेस्टेंट मत अंगीकार किया था। यह परिवार समृद्ध और सुसंस्कृत था, परन्तु क्रान्तिकारी नहीं था। त्रियेर की उच्च पाठशाला (जिम्नेज़ियम) में शिक्षा पाने के बाद, मार्क्स पहले बोन, फिर बर्लिन विश्वविद्यालय में भर्ती हुए। वहां वह क़ानून पढ़ते थे, और मुख्यतः इतिहास और दर्शन का अध्ययन करते थे। १८४१ में विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त करने के बाद उन्होंने डाक्टरेट के लिए एपीक्यूरस के दर्शन पर अपना थीसिस पेश किया। इस समय तक मार्क्स हेगेल के आदर्शवाद को माननेवालों में से थे। बर्लिन में वह ब्रूनो बावेर आदि "वामपंथी हेगेलवादियों"[2] में से थे, जो हेगेल के दर्शन से नास्तिक और क्रान्तिकारी निष्कर्ष निकालना चाहते थे।

विश्वविद्यालय से डिग्री लेने के बाद मार्क्स प्रोफ़ेसर बनने की आशा से बोन चले गये। परन्तु सरकार की प्रतिक्रियावादी नीति ने मार्क्स को अध्यापन कार्य का विचार तजने के लिए बाध्य किया। इसी नीति से १८३२ में लुडविग फ़ायरबाख़ को प्रोफ़ेसरी से अलग किया गया था, १८३६ में फिर उनके अध्यापन पर रोक लगायी गयी थी, और १८४१ में नवयुवक प्रोफ़ेसर ब्रूनो बावेर को बोन में अध्यापन कार्य करने से रोका गया। इस समय जर्मनी में वामपंथी हेगेलवाद के विचार ज़ोर पकड़ रहे थे। लुडविग फ़ायरबाख़ विशेष रूप से १८३६ के बाद धर्मशास्त्रों की आलोचना करने लगे थे और पदार्थवाद की ओर मुड़ चले थे। १८४१ तक उनके विचारों में पदार्थवाद की प्रधानता हो गयी थी ('ईसाई धर्म का सार')। १८४३ में उनकी पुस्तक 'भावी दर्शन के सिद्धान्त' प्रकाशित हुई। फ़ायरबाख़ की इन कृतियों के बारे में एंगेल्स ने बाद में लिखा था – "इन पुस्तकों ने जिस स्वाधीन चेतना को जन्म दिया था, वह एक अनुभव करने की वस्तु थी।" "हम" (मार्क्स समेत वामपंथी हेगेलवादी) "तुरन्त फ़ायरबाख़ के अनुयायी हो गये।" उस समय राइन प्रान्त के रहनेवाले मध्य-वर्ग के कुछेक आमूल-परिवर्तनवादियों ने, जिनका कई बातों में वामपंथी हेगेलवादियों से एकमत था, कोलोन में एक विरोधी पत्र 'राइनिशे त्साइटुङ' ('राइनी समाचारपत्र') निकाला (१ जनवरी १८४२)। मार्क्स और ब्रूनो बावेर को इसके प्रमुख

लेखकों के रूप में बुलाया गया। अक्तूबर १८४२ में मार्क्स उसके प्रधान सम्पादक हो गये और बोन से कोलोन चले आये। मार्क्स के सम्पादन-काल में पत्र का रुझान अधिकाधिक क्रान्तिकारी-जनवादी होता गया, इसलिए सरकार ने पहले-पहल पत्र पर दोहरी और तेहरी सेन्सर बिठायी; फिर १ जनवरी १८४३ से उसे एकदम बन्द ही कर देने का निश्चय कर लिया। मार्क्स को उस तिथि से पहले ही अपना सम्पादन छोड़ना पड़ा। परन्तु उनके अलग होने से भी पत्र बच नहीं सका। मार्च १८४३ में वह ठप हो गया। 'राइनिशे त्साइटुङ' में प्रकाशित, मार्क्स के अधिक महत्वपूर्ण लेखों में से – उन लेखों के अतिरिक्त जिनका उल्लेख नीचे किया गया है (**'साहित्य'**[3] देखिये) – एंगेल्स ने एक और लेख की चर्चा की है जो मार्क्स ने मोज़ेल घाटी के शराब पैदा करनेवाले किसानों की स्थिति के बारे में लिखा था[4]। मार्क्स ने अपने पत्रकार-अनुभव से जान लिया कि अभी वह राजनीतिक अर्थशास्त्र से भली भांति परिचित नहीं हैं, इसलिए वह उसका अध्ययन करने में जुट गये।

१८४३ में मार्क्स ने क्रेयत्स्नाख में जेनी फ़ॉन वेस्टफ़ालेन से विवाह किया। जेनी उनकी बचपन की मित्र थी, और मार्क्स जब विद्यार्थी थे, तभी उनसे बातचीत पक्की हो गयी थी। जेनी का जन्म प्रशा के अभिजातों के एक प्रतिक्रियावादी परिवार में हुआ था। १८५०-१८५८ के अत्यन्त प्रतिक्रियावादी काल में उनका बड़ा भाई प्रशा का गृह-मंत्री रहा था। १८४३ की शरद् में मार्क्स, एक आमूल-परिवर्तनवादी विचारों की पत्रिका निकालने के उद्देश्य से पेरिस आये। उनका साथ देनेवाले आर्नोल्ड रूगे थे (१८०२-१८८०; वामपंथी हेगेलवादी; १८२५ से १८३० तक जेल में; १८४८ के बाद राजनीतिक उत्प्रवासी; १८६६-१८७० के बाद बिस्मार्क के अनुयायी)। इस पत्रिका का, जिसका नाम 'जर्मन-फ़्रांसीसी वार्षिक' था, केवल एक ही अंक प्रकाशित हुआ। जर्मनी में गुप्त वितरण की कठिनाइयों और रूगे से मतभेद होने के कारण उसे बन्द कर देना पड़ा। इस पत्रिका में प्रकाशित अपने लेखों में मार्क्स अभी से क्रान्तिकारी दिखायी देते हैं। वह "सभी बातों की निर्मम आलोचना" विशेषकर "शस्त्रास्त्रों की आलोचना", का समर्थन करते हैं और **जनता** और **सर्वहारा वर्ग** से अपील करते हैं।

सितम्बर १८४४ में एंगेल्स कुछ दिन के लिए पेरिस आये और तबसे मार्क्स के घनिष्ठ मित्र हो गये। पेरिस के क्रान्तिकारी गुटों के सक्रिय जीवन में दोनों ने प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया (यहां पर प्रूदों के सिद्धान्तों[5] का बोलबाला था ; आगे चलकर १८४७ में मार्क्स ने 'दर्शनशास्त्र की निर्धनता' नाम की अपनी पुस्तक में उन सिद्धान्तों की बखिया उधेड़ दी)। निम्न-पूंजीवादी समाजवाद के विभिन्न सिद्धान्तों का डटकर खंडन करने के साथ-साथ उन्होंने क्रान्तिकारी **सर्वहारा-समाजवाद** या कम्युनिज़्म (मार्क्सिज़्म) के सिद्धान्तों और कार्यनीति की रूपरेखा निश्चित की। इस विषय की विशेष जानकारी के लिए, मार्क्स के इस काल के यानी १८४४-१८४८ के बीच के 'साहित्य' में दिये गये ग्रंथ देखिये। १८४५ में प्रशा की सरकार के आग्रह पर मार्क्स को एक ख़तरनाक क्रान्तिकारी क़रार देकर पेरिस से निकाल दिया गया। पेरिस से वह ब्रसेल्स आ गये। १८४७ के वसन्त में मार्क्स और एंगेल्स एक गुप्त प्रचार सभा 'कम्युनिस्ट लीग'[6] के सदस्य हो गये। उसकी दूसरी कांग्रेस में (लन्दन, नवम्बर, १८४७) उन्होंने विशेष भाग लिया, और उसी के अनुरोध पर उन्होंने अपना प्रसिद्ध 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' तैयार किया, जो फ़रवरी १८४८ में प्रकाशित हुआ। इस रचना में प्रतिभाशाली स्पष्टता और अनूठेपन से नया दृष्टिकोण हमारे सामने रखा गया है। इसमें पदार्थवाद का संगत रूप है जिसका प्रसार सामाजिक जीवन तक हुआ है। यह घोषित करता है कि द्वंद्ववाद विकास का सबसे व्यापक और आधारभूत सिद्धान्त है। इसने वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त और एक नये कम्युनिस्ट समाज के निर्माण में सर्वहारा वर्ग की विश्वव्यापी ऐतिहासिक क्रान्तिकारी भूमिका का प्रतिपादन किया।

जब १८४८ की फ़रवरी क्रान्ति शुरू हो गयी, तो मार्क्स बेलजियम से निकाल दिये गये। वह पेरिस लौट आये और मार्च की क्रान्ति के बाद वहां से जर्मनी में कोलोन चले गये। १ जून १८४८ से १९ मई १८४९ तक कोलोन में 'नोये राइनिशे त्साइटुङ'[7] निकलता रहा जिसके प्रधान सम्पादक मार्क्स थे। १८४८-१८४९ की क्रान्तिकारी घटनाओं से नये सिद्धान्त की ज़ोरदार पुष्टि हुई जैसे कि बाद में भी संसार के सभी देशों के सर्वहारा और जनवादी आन्दोलनों से उसकी पुष्टि हुई है। जर्मनी में क्रान्तिविरोधी

शक्तियों की जीत हुई और मार्क्स पर पहले मुकदमा चला दिया गया (६ फ़रवरी १८४६ को वह बरी कर दिये गये) और फिर १६ मई १८४६ को उन्हें जर्मनी से देशनिकाला दे दिया गया। वह पहले पेरिस गये, जहां से १३ जून १८४६ के जलूस के बाद, वह निकाल दिये गये। इसके बाद वह लन्दन चले गये और वहीं उन्होंने जीवन के शेष दिन बिताये।

मार्क्स और एंगेल्स के पत्र-व्यवहार से (१६१३ में प्रकाशित) मार्क्स के प्रवासी-जीवन की कठोरता पर प्रकाश पड़ता है। मार्क्स और उनके परिवार को दुःसह निर्धनता का सामना करना पड़ा। एंगेल्स ने आत्मत्याग करके मार्क्स की आर्थिक सहायता न की होती, तो न केवल वह 'पूंजी' को ही पूरा न कर पाते, वरन् अभावग्रस्त होकर वह निश्चय ही मर मिटते। इसके अलावा निम्न-पूंजीवादी और साधारणतः ग़ैर-सर्वहारा समाजवाद के प्रचलित सिद्धान्तों और प्रवृत्तियों ने मार्क्स को निरन्तर ही निर्ममता से लड़ते रहने पर बाध्य किया। कभी-कभी उन्हें भयानक और एकदम भद्दे व्यक्तिगत आक्षेपों का उत्तर («Herr Vogt»*) देना पड़ता था। प्रवासी राजनीतिक मण्डलों से दूर रहते हुए, मार्क्स ने राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन को अपना अधिकांश समय देते हुए, कई ऐतिहासिक कृतियों में (**'साहित्य'** देखिये) अपने पदार्थवादी सिद्धान्त को विकसित किया। 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समालोचना' (१८५६) और 'पूंजी' (खंड १, १८६७) में मार्क्स ने इस विज्ञान में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। (आगे देखिये – '**मार्क्स का सिद्धान्त**')।

छठे दशक के अन्तिम वर्षों तथा सातवें दशक में जनवादी आन्दोलनों की लहर फिर उठने लगी, इससे मार्क्स फिर राजनीतिक कार्यक्षेत्र में उतर पड़े। २८ सितम्बर १८६४ को 'अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर सभा' – वही प्रसिद्ध पहली इंटरनेशनल – की लन्दन में नींव डाली गयी। मार्क्स इस संगठन के प्राण थे। उसके पहले 'सम्भाषण' के लेखक वही थे और पचीसों प्रस्तावों, वक्तव्यों, घोषणापत्रों को उन्होंने ही लिखा था। मार्क्स ने विभिन्न देशों के मज़दूर आन्दोलनों को एक किया; ग़ैर-सर्वहारा तथा मार्क्सवाद से

---

* 'श्री फ़ोग्ट'। – स०

पहले के समाजवाद के विभिन्न रूपों को (मेज्जिनी, प्रूदों, बकूनिन, इंगलैण्ड में उदारवादी ट्रेड-यूनियन आन्दोलन, जर्मनी में लासाल का दक्षिणगामी ढुलमुलपन) संयुक्त कार्यवाही की लहर में परिणत करने की चेष्टा की। मार्क्स ने इन सभी मतों और धाराओं के सिद्धान्तों से लड़ाई की और इस प्रकार उन्होंने विभिन्न देशों में मज़दूर वर्ग के सर्वहारा-संघर्ष की एक कार्यनीति निश्चित की। पेरिस कम्यून के पतन (१८७१) के बाद – जिसका विश्लेषण मार्क्स ने ('फ़्रांस में गृहयुद्ध' १८७१ में) ऐसी मर्मभेदी दृष्टि से, सुघरता से, औचित्य से और ऐसे **प्रभावशाली** और क्रान्तिकारी ढंग से किया था – और बकूनिनवादियों[8] द्वारा इंटरनेशनल में फूट पैदा करने पर, उस संगठन के लिए यूरोप में रहना असम्भव हो गया। इंटरनेशनल की हेग कांग्रेस (१८७२) के बाद मार्क्स के आग्रह पर उसकी जेनरल परिषद को न्यूयार्क ले जाने का निश्चय किया गया। पहली इंटरनेशनल ने अपना ऐतिहासिक कार्य पूरा किया। उसके बाद एक ऐसा युग आया जिसमें संसार के सभी देशों में मज़दूर आन्दोलन की पहले से कहीं ज़्यादा बढ़ती हुई। इसी युग में आन्दोलन का प्रसार हुआ और उसकी परिधि **विस्तृत** हुई। अलग-अलग जातीय राज्यों के आधार पर **आम** समाजवादी मज़दूर पार्टियां बनीं।

इंटरनेशनल के लिए घोर परिश्रम करने से और उससे भी ज़्यादा अपने कठिन सैद्धान्तिक मनन, चिन्तन आदि के अथक परिश्रम के कारण मार्क्स का स्वास्थ्य गिरता चला गया। वह अपना राजनीतिक अर्थशास्त्र संबंधी कार्य करते रहे, **'पूंजी'** को समाप्त करने का प्रयत्न करते रहे, नयी-नयी बातों का पता लगाते रहे और कई भाषाएं (उदाहरण के लिए रूसी) सीखते रहे, परन्तु अस्वस्थ रहने के कारण वह **'पूंजी'** को पूरा न कर सके।

२ दिसम्बर १८८१ को उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। १४ मार्च १८८३ को आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे मार्क्स ने भी सदा के लिए आंखें मूंद लीं। वह हाइगेट सीमेट्री लन्दन में अपनी पत्नी के साथ दफ़नाये गये। मार्क्स के बच्चों में से कुछ उनकी भयानक ग़रीबी की हालत में बचपन में ही लन्दन में मर गये। उनकी तीन बेटियों ने अंग्रेज़ी और फ़्रांसीसी समाजवादियों से शादी की। इन बेटियों के नाम हैं: एल्योनोरा एवेलिंग, लौरा लफ़ार्ग, जेनी लॉन्गे। जेनी लॉन्गे का बेटा फ़्रांसीसी समाजवादी पार्टी का सदस्य है।

मार्क्स का सिद्धान्त

मार्क्स के क्रमबद्ध विचारों और सिद्धान्तों का नाम **मार्क्सवाद** है। १९ वीं सदी की तीन सैद्धान्तिक धाराएं—जिनके प्रतिनिधि रूप में संसार के तीन उन्नत देश थे—जर्मनी का क्लासिकल दर्शन, इंगलैण्ड का क्लासिकल राजनीतिक अर्थशास्त्र और फ़ान्स का समाजवाद, जिसके साथ वहां के क्रान्तिकारी सिद्धान्त भी मिले हुए थे—इन सबको आगे बढ़ाकर पूर्ण कर देनेवाली प्रतिभा मार्क्स की थी। मार्क्स के विचार कैसे संगत रूप से एक ही सूत्र में गुंथे हुए हैं, इस बात को उनके विरोधी भी स्वीकार करते हैं। इन विचारों का समष्टिरूप ही आधुनिक पदार्थवाद तथा आधुनिक वैज्ञानिक समाजवाद है, जो संसार के सभी सभ्य देशों के मज़दूर आन्दोलन का सैद्धान्तिक आधार और कार्यक्रम है। इसलिए यहां आवश्यक है कि मार्क्सवाद के मुख्य सार का याने मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्तों का विवेचन करने के पहले मार्क्स के दृष्टिकोण की रूपरेखा दे दी जाय।

दार्शनिक पदार्थवाद

१८४४-१८४५ से—जब मार्क्स की विचारधारा निश्चित हो गयी थी—वह एक पदार्थवादी, विशेषकर फ़ायरबाख़ के अनुयायी रहे। आगे चलकर भी उन्होंने देखा कि फ़ायरबाख़ की कमज़ोरी केवल यही है कि उनका पदार्थवाद काफ़ी संगत और व्यापक नहीं है। मार्क्स के लिए फ़ायरबाख़ की "युग-प्रवर्तक" और समस्त संसार के लिए ऐतिहासिक महत्ता इस बात में थी कि उन्होंने पूरी तरह से हेगेल के आदर्शवाद से नाता तोड़ लिया था। उनकी महत्ता उसी पदार्थवाद को घोषित करने में थी जिसे "१८ वीं सदी में भी, विशेषकर फ़ान्स में, तत्कालीन राजनीतिक संस्थाओं, धर्म और धर्मशास्त्र से ही नहीं... वरन् हर प्रकार के अतिभूतवाद (मेटा-फ़िज़िक्स)" ("स्वस्थ दर्शन" से भिन्न "उन्मत्त कल्पना की उड़ान" के अर्थ में) से लड़ना पड़ा था ('साहित्यिक विरासत' में 'पवित्र परिवार')। 'पूंजी' के प्रथम खंड के दूसरे संस्करण के उपसंहार में मार्क्स ने लिखा था: "हेगेल के लिए मानव

मस्तिष्क की चिन्तन-क्रिया जिसे वह विचार-तत्व का नाम देकर एक स्वतंत्र वस्तु मान लेते हैं, वास्तविक संसार का देमिऊर्ग (निर्माता, रचयिता) है। इसके विपरीत, मेरे लिए विचार-तत्व मानव-मस्तिष्क द्वारा प्रतिबिम्बित, और चिन्तन के विभिन्न रूपों में परिवर्तित, बाह्य संसार को छोड़कर और कुछ नहीं।" मार्क्स के पदार्थवादी दर्शन के पूर्ण रूप से अनुकूल, और उसकी व्याख्या करते हुए, एंगेल्स ने 'ड्यूहरिंग मत-खंडन' में (जिसकी पाण्डुलिपि मार्क्स ने पढ़ी थी), लिखा था: "संसार की एकता उसके अस्तित्व में नहीं है। संसार की वास्तविक एकता उसकी भौतिकता में है... जो दर्शन और प्रकृति-विज्ञान के एक सुदीर्घ और कठिन विकास से सिद्ध होती है... गति पदार्थ के अस्तित्व का रूप है। कहीं भी पदार्थ का अस्तित्व गति के बिना नहीं रहा और न ही गति पदार्थ के बिना हो सकती है... परन्तु यदि... यह प्रश्न उठाया जाय कि विचार और चेतना क्या हैं और इनका उद्‌गम क्या है, तो यह प्रकट हो जाता है कि वे मानव-मस्तिष्क की उपज हैं और मनुष्य स्वयं प्रकृति की उपज है जिसका अमुक वातावरण में, और प्रकृति के साथ, विकास हुआ है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव-मस्तिष्क की उपज अन्ततोगत्वा प्रकृति की ही उपज होने के कारण शेष प्रकृति का विरोध नहीं करती, वरन् उसके अनुरूप है।"
"हेगेल आदर्शवादी थे, अर्थात् उनके लिए मस्तिष्क के विचार वास्तविक चीज़ों और प्रक्रियाओं के कमोबेश भाववाचक प्रतिबिम्ब नहीं थे (मूल में Abbilder – प्रतिच्छाया; कभी-कभी एंगेल्स "नक़ल" का उल्लेख करते हैं), वरन् इसके विपरीत, उनके लिए चीज़ें और उनका विकास, किसी उस विचार-तत्व के ही गोचर रूप थे, जिसका अस्तित्व इस संसार के पहले ही कहीं न कहीं अवश्य था।" अपनी पुस्तक 'लुडविग फ़ायरबाख़' में जिसमें फ़ायरबाख़ के दर्शन पर अपने और मार्क्स के मतों की वह व्याख्या करते हैं, और जिसे १८४४-१८४५ में हेगेल, फ़ायरबाख़ और इतिहास की पदार्थवादी धारणा पर मार्क्स के साथ मिलकर लिखी हुई अपनी एक पुरानी पांडुलिपि को दोबारा पढ़ने के बाद उन्होंने प्रेस में दिया था – एंगेल्स ने लिखा था: "सभी तरह के दर्शनों का, विशेषकर आधुनिक दर्शन का मूल महाप्रश्न चित् और सत् (विचार और अस्तित्व),

आत्मा और प्रकृति के सम्बन्ध पर है... कि इनमें मूल कौन है, आत्मा या प्रकृति... दार्शनिकों ने इसके जो उत्तर दिये, उनके अनुसार वे दो बड़े दलों में विभक्त हो गये। जो प्रकृति की अपेक्षा आत्मा को मूल स्वीकार करते थे और इसलिए अन्ततोगत्वा किसी न किसी रूप में संसार की सृष्टि को भी मानते थे... वे आदर्शवादी दल में आ गये। दूसरे दार्शनिक जो प्रकृति को ही मूल स्वीकार करते थे, वे पदार्थवाद की विभिन्न धाराओं में आ गये।" आदर्शवाद और पदार्थवाद की धारणाओं का और किसी तरह से (दार्शनिक अर्थ में) प्रयोग केवल भ्रम उत्पन्न करता है। मार्क्स ने न केवल आदर्शवाद को ही (जो किसी न किसी रूप में धर्म से बंधा ही रहता है) निश्चित रूप से रद्द किया, वरन् ह्यूम और कान्ट के मतों को भी अस्वीकार किया जो आजकल विशेष रूप से प्रचलित हैं— विभिन्न रूपों में अज्ञेयवाद, समीक्षावाद और निरीक्षणवाद[9]। उनका कहना था कि यह दर्शन आदर्शवाद को दी गयी "प्रतिक्रियावादी" रियायत से अधिक कुछ नहीं, बहुत से बहुत, यह "संसार के सामने पदार्थवाद को अस्वीकार करते हुए भी उसे लुक-छिपकर मान लेने का ढंग है"। इस संबंध में एंगेल्स और मार्क्स की उपरोक्त कृतियों के सिवा एंगेल्स के नाम मार्क्स का १२ दिसम्बर १८६८ का पत्र भी देखना चाहिए। इसमें मार्क्स ने प्रसिद्ध प्रकृतिवादी टी० हेक्सली की एक उक्ति का उल्लेख किया है जिसमें "उनका पदार्थवाद अधिक उभर कर आया है"। हेक्सली ने लिखा था: "जब तक हम वास्तव में देखने और सोचने की क्रियाएं करते हैं, तब तक हम संभवतः पदार्थवाद से बच नहीं सकते।" मार्क्स ने उनपर दोष लगाया है कि उन्होंने अज्ञेयवाद और ह्यूमवाद के लिए एक बार फिर नयी "राह" छोड़ दी थी। स्वतंत्रता और आवश्यकता के संबंध में मार्क्स का मत जानना हमारे लिए विशेषतया महत्वपूर्ण है। वह कहते हैं—"आवश्यकता वहीं तक अन्धी होती है जहां तक वह समझी नहीं जाती। स्वतंत्रता आवश्यकता का ज्ञान ही है।" (एंगेल्स : 'ड्यूहरिंग मत-खंडन')। इसका अर्थ है, प्रकृति की वस्तुगत नियमितता की और आवश्यकता के स्वतंत्रता में द्वंद्वात्मक रूपान्तर की स्वीकृति (उसी भांति जैसे अज्ञात किन्तु ज्ञेय "मूल वस्तु" का "प्रतीत वस्तु" के रूप में, "वस्तुसार" का "घटनाओं" के रूप में परिवर्तन का

बोध)। मार्क्स और एंगेल्स ने "पुराने" पदार्थवाद के, जिसमें फ़ायरबाख़ का पदार्थवाद भी शामिल था, (बुख़नर, फ़ोग्ट और मोलेशौट के "बाज़ारी" पदार्थवाद का कहना ही क्या!) ये मुख्य दोष बताये थे: (१) यह "प्रधानतः यान्त्रिक" था और रसायन और जीवशास्त्र के नवीनतम विकास की ओर उसने ध्यान न दिया था (आजकल पदार्थ संबंधी विद्युत्-सिद्धान्त का उल्लेख करना भी आवश्यक होगा); (२) वह अनैतिहासिक और अद्वंद्वात्मक था (द्वंद्वात्मक-विरोधी होने से अतिभूतवादी था) और सभी क्षेत्रों में सुसंगत रूप से विकास के दृष्टिकोण का अनुसरण न करता था; (३) वह "मनुष्य का सार" भाववाचक रूप से समझता था, उसे "सभी सामाजिक संबंधों" के "समन्वय" के रूप में न देखता था (जो निश्चित और स्थूल रूप से ऐतिहासिक हैं),—और इस प्रकार वह संसार की "व्याख्या करता था" जब कि प्रश्न उसे "बदलने" का था, अर्थात् "क्रान्तिकारी व्यवहारिक कार्यवाही" का महत्व उसने न समझा था।

द्वंद्ववाद

मार्क्स और एंगेल्स की दृष्टि में हेगेल का द्वंद्ववाद जर्मनी के क्लासिकल दर्शन की सबसे महत्वपूर्ण देन है। विकास का यह सिद्धान्त व्यापक, गंभीर और सबसे अधिक सारपूर्ण है। विकास और क्रमिक उन्नति के अन्य सभी सिद्धान्तों को वे एकांगी और छिछला मानते थे, जो प्रकृति और समाज के वास्तविक विकास-क्रम को विकृत और भ्रष्ट कर देते थे (यह विकास बहुत बार छलांगों, आकस्मिक विध्वंसों और क्रान्तियों द्वारा भी होता है)। "मार्क्स और मैं स्वयं, प्रायः एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने" (हेगेलवाद और आदर्शवाद के ध्वंस से) "सचेत द्वंद्ववाद की रक्षा करने और प्रकृति की पदार्थवादी धारणा के लिए उसका प्रयोग करने का उद्देश्य अपने सामने रखा।" "द्वंद्ववाद की कसौटी प्रकृति है और यह मानना होगा कि आधुनिक प्रकृति-विज्ञान ने इस कसौटी के लिए बहुत-सी सामग्री और दिन-पर-दिन बढ़नेवाली सामग्री दी है।" (रेडियम, एलेक्ट्रोन और तत्वों के रूपांतर की जानकारी के पहले यह लिखा गया था!)।

"इस प्रकार प्रकृति-विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि अन्ततोगत्वा प्रकृति की क्रियाएं द्वंद्ववादी हैं, न कि अतिभूतवादी!"

एंगेल्स ने यह भी लिखा था: "जन-साधारण की चेतना में एक आधारभूत महान विचार ने इस प्रकार व्यापकता से घर कर लिया है—विशेषकर हेगेल के समय से—कि उसके बारे में शायद ही कभी कोई शंका उठाता हो। यह विचार इस प्रकार है: संसार को स्वतः प्रस्तुत पदार्थों का संगठन कहने से उसका बोध नहीं हो सकता; उसे प्रक्रियाओं का संगठन मानना चाहिए। इन प्रक्रियाओं में पदार्थ ऊपर से वैसे ही स्थायी जान पड़ते हैं जैसे मस्तिष्क के भीतर उनके मानसिक प्रतिबिम्ब, उनकी कल्पनाएं परन्तु इन पदार्थों के आवागमन का एक अबाध परिवर्तन-क्रम चला ही करता है। परन्तु इस आधारभूत विचार को शब्दों में स्वीकार कर लेना एक बात है और यथार्थ में, उसे अनुसंधान के सभी क्षेत्रों में सर्वांशतः लागू करना दूसरी बात है।" "द्वंद्वात्मक दर्शन के लिए कुछ भी अन्तिम, त्रिकाल-सत्य और पवित्र नहीं है। वह हर चीज़ में, और हर चीज़ की, अनित्यता का दर्शन कराता है। उसके सामने आवागमन के अबाध क्रम को छोड़कर, निम्न से ऊर्ध्व की ओर अविराम उन्नति को छोड़कर, कुछ भी चिरन्तन नहीं है। और द्वंद्वात्मक दर्शन अपने में चिन्तनशील मस्तिष्क में इस क्रम के प्रतिबिम्ब मात्र के सिवा कुछ नहीं है।" इस प्रकार मार्क्स के अनुसार द्वंद्ववाद "बाह्य संसार और मानवीय चिन्तन दोनों की ही गति के सामान्य नियमों का विज्ञान" है।

हेगेल के दर्शन के इस क्रान्तिकारी पहलू को मार्क्स ने अपनाया और उसे आगे बढ़ाया। द्वंद्वात्मक पदार्थवाद को "अब ऐसे दर्शन की ज़रूरत नहीं है जो दूसरे विज्ञानों से ऊपर हो"। पहले के दर्शन में अब "चिन्तन और उसके नियम—औपचारिक तर्कशास्त्र और द्वंद्ववाद" शेष रहे। मार्क्स द्वंद्ववाद का जो अर्थ लगाते थे और इसमें उनके विचार हेगेल से मिलते थे—उसमें वर्तमान बोध-सिद्धान्त भी आ जाता है। इसके अनुसार भी विषय-वस्तु पर वैसे ही विचार करना होगा—बोध के उद्गम और विकास का अज्ञान से ज्ञान की ओर संक्रमण का ऐतिहासिक अध्ययन करके उससे व्यापक परिणाम निकालना होगा।

वर्तमान काल में उन्नति और विकास की अवधारणा प्रायः पूर्ण रूप से सामाजिक चेतना में घुस गयी है। परन्तु यह काम और तरह से हुआ है, हेगेल के दर्शन द्वारा नहीं। परन्तु हेगेल के दर्शन के आधार पर मार्क्स और एंगेल्स ने उसी कल्पना की जो व्याख्या की है, वह प्रचलित विकास-सिद्धान्त से अधिक व्यापक और गम्भीर है। विकास-क्रम में मालूम होता है कि पहले की मंज़िलें फिर लौट कर आ रही हैं परन्तु ये मंज़िलें एक दूसरे ढंग से, एक और ऊंचे स्तर पर आती हैं ("निषेध का निषेध"); यह विकास सीधी रेखा में न होकर शंखतुल्य आवर्तपूर्ण होता है; —यह विकास छलांग, विध्वंस और क्रान्ति द्वारा ही होता है; —"क्रमविकास में खंड"; मात्रा का गुण में परिवर्तन होता है; —किसी वस्तु, घटनाक्रम या समाज पर घात-प्रतिघात करनेवाली विभिन्न शक्तियों अथवा प्रवृत्तियों के अन्तर्विरोध तथा टकराव से विकास के लिए आन्तरिक प्रेरणा मिलती है; प्रत्येक घटनाक्रम के **सभी** अंगों में परस्पर निर्भरता, और इस प्रकार निकटतम और अटूट सम्बद्धता होती है (इतिहास नित नये अंगों को प्रकट करता जाता है); इस सम्बद्धता से एकरूप, नियमचालित तथा विश्वव्यापी गतिक्रम संभव होता है—विकास के सिद्धान्त के (साधारण की तुलना में) अधिक सम्पन्न द्वंद्ववाद की यही कुछ विशेषताएं हैं। (एंगेल्स के नाम मार्क्स का ८ जनवरी १८६८ का वह पत्र देखिये जिसमें वह स्टाइन के उस "निर्जीव त्रयवाद" की खिल्ली उड़ाते हैं, जिसे पदार्थवादी द्वंद्ववाद समझना मूर्खता है)।

इतिहास की पदार्थवादी धारणा

पुराने पदार्थवाद की असंगति, अपूर्णता और एकांगीपन का अनुभव करके मार्क्स को निश्चय हो गया कि "समाज-विज्ञान तथा उसके पदार्थवादी आधार में सामंजस्य स्थापित करना और उस आधार पर उसका पुनर्निर्माण करना" आवश्यक है। यदि साधारण रूप से पदार्थवाद के अनुसार चेतना अस्तित्व का परिणाम है, न कि उसके विपरीत, तो मनुष्य जाति के सामाजिक जीवन पर पदार्थवाद को लागू करने से यह भी स्पष्ट हो जाना

चाहिए कि **सामाजिक** चेतना **सामाजिक** अस्तित्व का परिणाम है। 'पूंजी के प्रथम खंड में मार्क्स ने लिखा था : "प्रौद्योगिकी से पता चलता है कि प्रकृति से मनुष्य किस तरह व्यवहार करता है, वह उत्पादन-क्रम क्या है जिससे उसका जीवन-यापन होता है; और इसी से उस पद्धति का भी पता चलता है जिसके अनुसार मनुष्य के सामाजिक सम्बन्ध और तज्जनित मानसिक कल्पनाएं निर्मित होती हैं।" 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समालोचना' की भूमिका में मार्क्स ने मानव-समाज और उसके इतिहास पर लागू होनेवाले पदार्थवाद के आधारभूत सिद्धान्तों की सुसम्बद्ध व्याख्या की है। वह व्याख्या इस प्रकार है:

"मनुष्य जो सामाजिक उत्पादन करते हैं, उसमें वे ऐसे निश्चित संबंध स्थापित करते हैं जो अनिवार्य और उनकी इच्छा से स्वतंत्र होते हैं। ये उत्पादन-सम्बन्ध भौतिक उत्पादक शक्तियों के विकास की एक निश्चित अवस्था के अनुकूल ही होते हैं।

"इन उत्पादन-सम्बन्धों का योग ही समाज का आर्थिक ढांचा है, वह असली नींव है, जिसपर राजनीति और क़ानून की भारी इमारत खड़ी होती है; उसी ढांचे के अनुरूप सामाजिक चेतना के विभिन्न निश्चित रूप भी होते हैं। भौतिक जीवन में उत्पादन की पद्धति साधारण रूप से सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन-क्रम को निश्चित करती है। मनुष्य की चेतना अस्तित्व को निश्चित नहीं करती; इसके विपरीत उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को निश्चित करता है। अपने विकास की एक नियत अवस्था तक पहुंच जाने के बाद समाज के विद्यमान उत्पादन-सम्बन्धों से भौतिक उत्पादक शक्तियों की मुठभेड़ होती है, या—जोकि इस बात की केवल क़ानूनी अभिव्यक्ति है—सम्पत्ति के जिन संबंधों में पहले उन शक्तियों का विकास होता था, उनसे उनकी मुठभेड़ होती है। ये उत्पादन-संबंध उत्पादक शक्तियों के विकास के विभिन्न रूप न रहकर अब उनके बन्धन हो जाते हैं। इसके बाद सामाजिक क्रान्ति का युग आरंभ होता है। आर्थिक नींव बदलने से उसपर बनी हुई वह भारी-भरकम इमारत भी बहुत कुछ जल्दी ही बदल जाती है। इस तरह के परिवर्तनों पर विचार करते हुए एक भेद अवश्य समझ लेना चाहिए। एक तो उत्पादन की आर्थिक

परिस्थितियों में भौतिक परिवर्तन होता है जिसे हम प्रकृतिविज्ञान की सही नापतौल की तरह आंक सकते हैं। दूसरा परिवर्तन क़ानूनी, राजनीतिक, धार्मिक, कलात्मक या दार्शनिक – संक्षेप में सैद्धान्तिक रूपों का होता है जिसमें मनुष्य संघर्ष के प्रति सचेत हो जाते हैं और निपटारे के लिए युद्ध करते हैं।

"किसी व्यक्ति के बारे में हम अपनी धारणा इस बात से नहीं बनाते कि वह अपने बारे में क्या सोचता है; इसी तरह परिवर्तन-युग को उसकी चेतना के बल पर हम नहीं परख सकते। इसके विपरीत इस चेतना की व्याख्या हम भौतिक जीवन के अन्तर्विरोधों के आधार पर करेंगे, उस विद्यमान संघर्ष के बल पर करेंगे जो समाज की उत्पादक शक्तियों और उत्पादन-संबंधों के बीच हो रहा है"... "मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि उत्पादन की एशियाई, प्राचीन, सामंतशाही और आधुनिक पूंजीवादी प्रणालियां समाज के आर्थिक संगठन के प्रगतिशील युग कही जा सकती हैं।" (एंगेल्स के नाम मार्क्स के ७ जुलाई १८६६ के पत्र में इस उक्ति की ओर ध्यान दीजिये: "हमारा सिद्धान्त है कि उत्पादन के साधनों द्वारा श्रम-संगठन निश्चित होता है।")

इतिहास की पदार्थवादी धारणा की खोज से, अथवा यह कहना अधिक उचित होगा कि सामाजिक घटनावली के क्षेत्र में पदार्थवाद के संगत प्रसार से, पहले के इतिहास के सिद्धान्तों के दो मुख्य दोष दूर हो गये। सबसे पहले वे सिद्धान्त बहुत से बहुत, मनुष्यों के ऐतिहासिक क्रिया-कलाप की सैद्धान्तिक प्रेरणा की छान-बीन करते थे। इस सैद्धांतिक प्रेरणा के मूल स्रोत का पता लगाने की चेष्टा वे न करते थे; सामाजिक संबंधों की व्यवस्था के विकास में कौनसे वस्तुगत नियम काम कर रहे हैं, उन्हें उन्होंने न समझा था। वे यह न देख सकते थे कि सामाजिक संबंधों के रूप भौतिक उत्पादन के स्तर पर निर्भर हैं। इसके सिवा, पहले के इतिहास-शास्त्र ने **जनता** की कार्यवाही को अपना विषय ही न बनाया था। इसके विपरीत ऐतिहासिक पदार्थवाद से यह पहली बार संभव हुआ कि जन-जीवन की सामाजिक परिस्थितियों और उन परिस्थितियों के परिवर्तन का हम वैज्ञानिक प्रामाणिकता से अध्ययन करें। मार्क्स से पहले

का "समाज-विज्ञान" श्रौर इतिहास लेखन **अधिक से अधिक** जहां-तहां से अपरिपक्व सामग्री उठाकर रख देते थे, और ऐतिहासिक क्रम के कुछ एक पहलुओं का वर्णन कर देते थे। मार्क्सवाद ने विरोधी प्रवृत्तियों के **समन्वय** को लेकर उसकी छान-बीन की, समाज के विभिन्न **वर्गों** की उत्पादन-पद्धति और उनके जीवनक्रम की ऐसी परिस्थितियों के रूप में उन प्रवृत्तियों का सार निकाला कि उनकी निश्चित शब्दों में व्याख्या हो सके। मार्क्सवाद ने कुछ "विशिष्ट" विचारों के चयन में या उनकी व्याख्या करने में निरंकुशता और व्यक्तिगत भावना को ठुकराया और दिखाया कि किस तरह निरपवाद रूप से सभी विभिन्न प्रवृत्तियों और विचारों का **उद्गम** उत्पादन की भौतिक शक्तियों की परिस्थितियों में है। मार्क्सवाद ने सामाजिक-आर्थिक संगठनों की उन्नति, विकास और ह्रास के क्रम के एक व्यापक और सर्वग्राही अध्ययन का मार्ग दिखाया। मनुष्य अपने इतिहास के विधायक हैं। परन्तु उनकी कार्य-प्रेरणा, अर्थात् जन-समूहों की कार्य-प्रेरणा को निश्चित करनेवाला कौन है? विरोधी विचारों और प्रयत्नों के संघर्ष का कारण क्या है? मानव-समाजों के सम्पूर्ण समूह में इन संघर्षों का पंजीभूत परिणाम क्या होता है? भौतिक जीवन के उत्पादन की वस्तुगत परिस्थितियां क्या हैं जो मनुष्य के सम्पूर्ण ऐतिहासिक क्रिया-कलाप का आधार बनती हैं? इन परिस्थितियों के विकास का नियम क्या है? इन सब बातों की ओर मार्क्स ने ध्यान दिलाया और वह मार्ग दिखाया जिससे कि अपनी असीम विविधता और विरोध के होते हुए भी सूत्रबद्ध नियमित क्रम के रूप में इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन हो सके।

वर्ग-संघर्ष

किसी भी समाज में कुछ लोगों के प्रयत्न दूसरों के प्रयत्नों से टक्कर खाते हैं; सामाजिक जीवन अन्तर्विरोधों से पूर्ण है; इतिहास हमें जातियों और समाजों के संघर्ष का परिचय देता है और बताता है कि स्वयं प्रत्येक जाति और समाज के भीतर संघर्ष होता है; क्रान्ति और प्रतिक्रिया, शान्ति और युद्ध, गतिरोध और द्रुतविकास या ह्रास के युग आते-जाते

रहते हैं, ये तथ्य सर्वविदित थे। मार्क्सवाद से इस प्रकटत: भूल-भुलैयां और शृंखलाहीनता में नियम का शासन खोज निकालने के लिए कुंजी मिल जाती है। यह कुंजी वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त है। किसी भी समाज या समाजों के समूह के सभी सदस्यों के प्रयत्नों के समन्वय के अध्ययन से ही इन प्रयत्नों के परिणाम की वैज्ञानिक व्याख्या हो सकती है। जिन **वर्गों** में समाज विभाजित होता है, उनकी जीवन-पद्धति और परिस्थितियों के भेद से विरोधी प्रयत्नों का उद्‌गम होता है। 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में मार्क्स ने लिखा था, "अब तक के विद्यमान सब समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है।" (एंगेल्स ने बाद में जोड़ दिया था– "आदिम जन-समुदाय को छोड़ कर।") "स्वतंत्र मनुष्य और दास, अभिजातवर्ग और साधारण प्रजा (पेट्रीशियन और प्लेबियन), सामन्त और कम्मी (अर्ध-गुलाम), फ़ोरमैन और मज़दूर कारीगर, संक्षेप में पीड़क और पीड़ित के बीच, तीव्र संघर्ष चलता आया है। ये दोनों वर्ग, कभी छिपे कभी प्रकट, बराबर एक दूसरे से लड़ते रहे। इस लड़ाई के अन्तस्वरूप या तो समाज के सारे ढांचे के अन्दर आमूल क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाता, या दोनों विरोधी वर्ग बर्बाद हो जाते ... सामन्ती समाज के ध्वंस से पैदा हुए आधुनिक पूंजीवादी समाज ने वर्ग-विरोधों को ख़त्म नहीं कर दिया है। उसने केवल पुराने वर्गों के स्थान में नये वर्ग, पीड़न की नयी पद्धति, और संघर्ष के नये स्वरूप खड़े कर दिये हैं। हमारे अपने युग, पूंजीवादी युग की, दूसरे युगों की तुलना में बस यही विशेषता है कि इसने वर्ग-विरोधों को सरल बना दिया है। आज का समाज अधिकाधिक दो महान विरोधी जमातों में, एक दूसरे के खिलाफ़ सीधे खड़े पूंजीपति और सर्वहारा, दो महान वर्गों में बंटता जा रहा है।" जब से फ़्रांस की महान क्रान्ति हुई है तब से यूरोप के इतिहास में हमें विभिन्न देशों के भीतरी घटनाचक्र में यही वर्ग-संघर्ष साफ़ साफ़ नज़र आ रहा है। फ़्रांस में बादशाह की सत्ता की पुन:स्थापना[10] के काल में कुछ ऐसे इतिहासकार हो भी गये थे (त्येरीं, गिज़ो, मिन्ये, थियेर) जो घटनाक्रम का परिणाम निकालते हुए यह देखने के लिए बाध्य हुए कि फ़ान्स के सम्पूर्ण इतिहास को समझने की कुंजी वर्ग-संघर्ष है। वर्तमान युग में, जब

पूंजीवादी वर्ग की पूर्ण विजय हो गयी है, जिस युग में प्रतिनिधि-संस्थाएं हैं, विस्तृत (या आम) मताधिकार है, जनता तक पहुंचनेवाले सस्ते दैनिक हैं, मज़दूरों और मालिकों आदि के शक्तिशाली और नित विस्तृत होनेवाले संगठन हैं,—इस युग में और भी स्पष्ट रूप में दिखायी देता है (यद्यपि कभी कभी बहुत ही एकांगी, "शान्तिपूर्ण", और "वैधानिक" रूप में) कि वर्ग-संघर्ष ही घटनाओं की मूल प्रेरणा है। मार्क्स के 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के निम्नलिखित वाक्यों से पता चलेगा कि वर्तमान समाज में प्रत्येक वर्ग की स्थिति के वस्तुगत विश्लेषण में, और प्रत्येक वर्ग के विकास की दशा के विश्लेषण के लिए, मार्क्स सामाजिक विज्ञान से क्या चाहते थे: "पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध आज जितने वर्ग खड़े हैं उन सब में केवल सर्वहारा वर्ग ही वास्तविक रूप में क्रान्तिकारी है। दूसरे वर्ग आधुनिक उद्योग के सामने नष्ट-भ्रष्ट होकर आख़िर में ख़तम हो जाते हैं। सर्वहारा वर्ग उसकी आवश्यक और ख़ास अपनी उपज है। निम्न मध्य-वर्ग के लोग: छोटे कारख़ानेदार, दूकानदार, दस्तकार, किसान,—ये सब अपने मध्यवर्गीय अस्तित्व को बचाये रखने के लिए पूंजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ लड़ते हैं। इसलिए वे क्रान्तिकारी न होकर रूढ़िवादी होते हैं। बल्कि, इतना ही नहीं, वे प्रतिक्रियावादी हैं, क्योंकि वे इतिहास के पहियों को पीछे की ओर घुमाने की कोशिश करते हैं। अगर संयोग से वे क्रान्तिकारी होते हैं तो वह सिर्फ़ इस ख़याल से कि उन्हें सर्वहाराओं की श्रेणी में पहुंचना पड़ेगा, कि वे अपने वर्तमान हितों की नहीं, बल्कि भविष्य के स्वार्थों की रक्षा करते हैं और अपना दृष्टिकोण छोड़कर सर्वहारा वर्ग का दृष्टिकोण अपना लेते हैं।" मार्क्स ने कई ऐतिहासिक ग्रंथों में (**'साहित्य'** देखिये) पदार्थवादी इतिहास-लेखन की गम्भीर और श्रेष्ठ मिसालें दीं। उन्होंने **प्रत्येक** वर्ग विशेष की स्थिति और कभी-कभी एक ही वर्ग के भीतर के विभिन्न गुटों या स्तरों का विश्लेषण किया और स्पष्ट रूप से दिखाया कि क्यों और कैसे "प्रत्येक वर्ग-संघर्ष राजनीतिक संघर्ष है"। ऊपर के उद्धरण से पता चलता है कि समूचे ऐतिहासिक विकास का परिणाम निश्चित करने के लिए मार्क्स सामाजिक सम्बन्धों के किस तानेबाने और एक वर्ग से दूसरे वर्ग

तक, भूतकाल से भविष्य तक के **संक्रमण** की अवस्थाओं का विश्लेषण करते हैं।

मार्क्स के आर्थिक सिद्धांतों द्वारा मार्क्सवाद का सबसे गंभीर, बहुमुखी और सर्वांगीण पुष्टीकरण तथा प्रयोग हुआ है।

मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्त

'पूंजी' के प्रथम खंड की भूमिका में मार्क्स ने लिखा था—"इस पुस्तक का अन्तिम ध्येय वर्तमान समाज" (अर्थात् पूंजीवादी, बुर्जुआ समाज) "की गति के आर्थिक नियम को प्रकट करना है।" किसी विशेष और ऐतिहासिक दृष्टि से निर्धारित समाज के उत्पादन-संबंधों की उत्पत्ति, विकास और ह्रास का अनुसंधान—यह है मार्क्स के आर्थिक सिद्धांत का अन्तरस्थ। पूंजीवादी समाज की प्रमुख विशेषता **माल** तैयार करना है और इस कारण से मार्क्स का विश्लेषण माल की छान-बीन से शुरू होता है।

मूल्य

माल उसे कहते हैं जिससे मनुष्य की कोई ज़रूरत पूरी होती हो; इसके सिवा माल उसे कहते हैं जिसके बदले में कोई और चीज़ मिल सके। किसी वस्तु की उपयोगिता से वह **उपयोग-मूल्य** बनती है। विनिमय-मूल्य (अथवा केवल मूल्य) सबसे पहले एक अनुपात के रूप में आता है। यह अनुपात एक तरह के कुछ उपयोग-मूल्यों से दूसरी तरह के कुछ उपयोग-मूल्यों के विनिमय में होता है। दैनिक जीवन हमें बताता है कि इस तरह के लाखों-करोड़ों विनिमयों से तमाम तरह के उपयोग-मूल्य जो परस्पर भिन्न और एक दूसरे के समकक्ष नहीं हैं, सारा वक़्त एक दूसरे के बराबर कर दिये जाते हैं। सामाजिक संबंधों की किसी निश्चित व्यवस्था में इन तरह-तरह की चीज़ों में समान वस्तु क्या है, जो बराबर एक दूसरे से नापी-तौली जाती हैं? उनमें समानता यह है कि वे **श्रम की उपज** हैं। इस तरह वस्तुओं का विनिमय करने में लोग अत्यंत विलग-

विलग कोटि के श्रम का सन्तुलन करते हैं। मालों का उत्पादन सामाजिक संबंधों की ऐसी व्यवस्था है जिसमें विभिन्न उत्पादक विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन करते हैं (श्रम का सामाजिक विभाजन), और जिसमें इन सभी वस्तुओं को विनिमय में एक दूसरे के बराबर रखा जाता है। फलतः इन सभी मालों में जो तत्व समान रूप से है, वह उत्पादन के किसी निश्चित विभाग का ठोस श्रम नहीं है, न किसी विशेष प्रकार का श्रम है, वरन् **भाववाचक** मानव-श्रम है, साधारण रूप से मानव-श्रम। सभी मालों के संपूर्ण मूल्य के रूप में किसी भी समाज की सम्पूर्ण श्रम-शक्ति एक ही मानवीय श्रमशक्ति है। विनिमय के लाखों-करोड़ों कार्यों से यह सिद्ध होता है। फलतः प्रत्येक माल श्रम के उस समय के एक अंश का ही प्रतिरूप है जो **सामाजिक दृष्टि से आवश्यक** होता है। किसी उपयोग-मूल्य के, या किसी माल के उत्पादन के लिए सामाजिक दृष्टि से श्रम का जो समय आवश्यक है, या सामाजिक दृष्टि से श्रम की जितनी मात्रा आवश्यक है, उसी से मूल्य की मात्रा आंकी जा सकती है। "जब भी विनिमय द्वारा हम विभिन्न वस्तुओं का सन्तुलन करते हैं तब इस क्रिया से ही उन पर व्यय किये हुए विभिन्न प्रकार के श्रम का भी सन्तुलन करते हैं। हम इसके प्रति सजग नहीं होते, फिर भी उसे करते हैं।" जैसा कि पहले के एक अर्थशास्त्री ने कहा था, मूल्य दो व्यक्तियों के बीच का संबंध है; केवल उसे यह भी जोड़ देना चाहिए था कि यह संबंध एक भौतिक आवरण के भीतर है। मूल्य क्या है,—इसे हम तभी समझेंगे जब हम उसे किसी निश्चित ऐतिहासिक समाज में सामाजिक उत्पादन-संबंधों की व्यवस्था के दृष्टिकोण से देखें, और ऐसे उत्पादन-संबंधों की व्यवस्था के दृष्टिकोण से जो सामूहिक रूप में प्रकट होते हैं, जहां विनिमय-चक्र के लाखों-करोड़ों आवर्तन होते हैं। "मूल्यों के रूप में, सभी माल केवल जड़ीभूत श्रम-समय के निश्चित ढेर हैं।" मालों में निहित श्रम की दोहरी विशेषता का सांगोपांग विश्लेषण करके मार्क्स ने **मूल्य के स्वरूप** और **मुद्रा** का विश्लेषण किया है। यहां उनका मुख्य कार्य मूल्य के मुद्रा-रूप के **उद्‌गम** का अध्ययन करना है; विनिमय के विकास के **ऐतिहासिक क्रम** का अध्ययन करना है। इस

विकास-क्रम में सबसे पहले वह विनिमय के इक्का-दुक्का, अलग-अलग कार्यों को लेते हैं ("साधारण, विलग या आकस्मिक मूल्य-रूप", जिसमें किसी माल की एक मात्रा का दूसरे माल की एक निश्चित मात्रा से विनिमय किया जाता है)। इसके बाद वह मूल्य के सार्वजनीन रूप की ओर बढ़ते हैं, जिसमें कई भिन्न-भिन्न मालों का एक ही विशेष माल से विनिमय होता है। अंत में वह मूल्य के मुद्रा-रूप का विवेचन करते हैं जहां स्वर्ण ही यह विशेष माल और सार्वजनीन अनुरूप साधन बन जाता है। विनिमय के विकास और मालों के उत्पादन की उच्चतम उपज होने के कारण, मुद्रा सारे व्यक्तिगत श्रम की सामाजिकता पर पर्दा डालती है और उसे छिपाती है; वह विभिन्न उत्पादकों के सामाजिक बन्धन को छिपाती है जिन्हें बाज़ार एक-दूसरे से मिलाता है। मार्क्स ने मुद्रा की विभिन्न क्रियाओं का विस्तृत ढंग से विश्लेषण किया है। यहां विशेष रूप से इस बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है (और साधारणतः 'पूंजी' के आरम्भ के अध्यायों में) कि जो व्याख्या की भाववाचक और कभी-कभी केवल निष्कर्ष-प्रधान पद्धति मालूम होती है, वह वास्तव में विनिमय और मालों के उत्पादन के विकास के इतिहास के सम्बन्ध में तथ्य के विशाल संकलन का प्रतिरूप है। "यदि मुद्रा पर हम विचार करें, तो उसके अस्तित्व से मालों के विनिमय की एक निश्चित अवस्था लक्षित होती है। मुद्रा के जो विशेष उपयोग हैं चाहे मालों की बराबरी के धन के रूप में, चाहे प्रचलन के साधन के रूप में, अथवा भुगतान के लिए, चाहे जोड़े हुए धन के रूप में या विश्व मुद्रा के रूप में,—उन उपयोगों से एक न एक उपयोग के प्रसार की मात्रा और उसके न्यूनाधिक प्राधान्य के अनुरूप, सामाजिक उत्पादन-क्रम में बहुत ही भिन्न कोटि की अवस्थाओं का पता लगता है।" ('पूंजी', खंड १)

अतिरिक्त मूल्य

माल के उत्पादन में एक अवस्था ऐसी आती है जब मुद्रा पूंजी में बदल जाती है। माल के आदान-प्रदान का सूत्र था, माल—मुद्रा—माल, अर्थात् एक तरह का माल ख़रीदने के लिए दूसरी तरह का माल बेचना।

लेकिन इसके विपरीत पूंजी का साधारण सूत्र है मुद्रा – माल – मुद्रा, अर्थात् (मुनाफ़े पर) बेचने के लिए खरीदना। जो मुद्रा आदान-प्रदान के लिए निकाली जाती है, उसकी असली क़ीमत के ऊपर जो बढ़ती होती है, उसे मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य का नाम दिया है। पूंजीवादी आदान-प्रदान में मुद्रा की इस "बढ़ती" को सभी लोग जानते हैं। वास्तव में यह "बढ़ती" ही एक विशेष, इतिहास द्वारा निश्चित उत्पादन के सामाजिक सम्बन्ध के रूप में मुद्रा को **पूंजी** में परिवर्तित करती है। मालों के आदान-प्रदान से अतिरिक्त मूल्य नहीं उत्पन्न हो सकता, क्योंकि इसमें केवल बराबर की चीज़ों का विनिमय होता है; क़ीमतों के बढ़ने से भी उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि ख़रीदने और बेचनेवालों का परस्पर हानि-लाभ बराबर हो जायेगा। और यहां पर हमारा विषय इक्की-दुक्की घटनाओं से सम्बन्धित न होकर सामूहिक रूप से औसत सामाजिक घटना-क्रम से है। अतिरिक्त मूल्य पाने के लिए "थैलीशाहों को बाज़ार में ऐसा माल मिलना ही चाहिए जिसके उपयोग-मूल्य में यह विशेष गुण है कि वह मूल्य का उद्गम है"। यह ऐसा माल होता है जिसका प्रत्यक्ष उपयोग-क्रम मूल्य का भी निर्माण-क्रम है। ऐसे माल का अस्तित्व है। वह है मनुष्य की श्रम-शक्ति। उसका उपयोग श्रम है और श्रम से मूल्य बनता है। पैसेवाला श्रम-शक्ति को उसके मूल्य पर ख़रीद लेता है। हर माल के मूल्य की तरह श्रम-शक्ति का मूल्य भी उसके उत्पादन के लिए सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम के समय द्वारा (अर्थात् मज़दूर और उसके परिवार के भरण-पोषण के लिए आवश्यक धन द्वारा) निश्चित होता है। श्रम-शक्ति को ख़रीद लेने के बाद पैसेवाले का हक़ होता है कि वह उसका उपयोग करे यानी उसे दिनभर – मान लीजिये बारह घंटे – काम में लगाये रहे। इसी बीच छः घंटों में ही ("आवश्यक" श्रम-समय में) मज़दूर इतना उत्पादन कर लेता है जिससे उसके भरण-पोषण का ख़र्च निकल सके। इसके बाद के छः घंटों में ("अतिरिक्त" श्रम-समय में) वह "अतिरिक्त" माल या अतिरिक्त मूल्य पैदा करता है जिसके लिए पूंजीपति उसे कुछ नहीं देता। इसलिए उत्पादन-क्रम के विचार से हमें पूंजी के दो भागों में भेद करना चाहिये: पहली, स्थिर पूंजी (कौंस्टेंट

कैपिटल) जो उत्पादन के साधनों पर (मशीनों, औज़ारों, कच्चे माल वग़ैरा पर) ख़र्च की जाती है, जिसका मूल्य (एकबारगी अथवा क्रमश:) बिना किसी परिवर्तन के तैयार माल में बदल दिया जाता है; दूसरी, अस्थिर पूंजी (वेरियेबल कैपिटल) जो श्रम-शक्ति पर ख़र्च की जाती है। इस अस्थिर पूंजी का मूल्य एक सा नहीं रहता वरन् श्रम करने के साथ बढ़ता है और अतिरिक्त मूल्य का निर्माण करता है। इसलिए पूंजी द्वारा श्रम-शक्ति के शोषण का हिसाब करने के लिए हमें अतिरिक्त मूल्य की तुलना संपूर्ण पूंजी से नहीं वरन् केवल अस्थिर पूंजी से करनी चाहिए। इस प्रकार ऊपर के उदाहरण में, अतिरिक्त मूल्य की दर—जैसा कि मार्क्स ने इस संबंध का नामकरण किया है—छः छः के अनुपात में, अर्थात् शतप्रतिशत होगी।

पूंजी की उत्पत्ति के लिए ऐतिहासिक आवश्यकताएं इस प्रकार थीं: पहले, साधारण रूप से मालों के उत्पादन के अपेक्षाकृत उच्च विकास की परिस्थितियां और व्यक्तियों के हाथों में विशेष मात्रा में धन का इकट्ठा हो जाना; दूसरे ऐसे मज़दूरों का अस्तित्व जो दो अर्थों में "स्वाधीन" हैं—अपनी श्रम-शक्ति के बेचने में किसी तरह की बाधा, या नियंत्रण से स्वाधीन और धरती या साधारण रूप से उत्पादन के साधनों से स्वाधीन; अर्थात् संपत्तिहीन मज़दूरों का अस्तित्व, उन "सर्वहारा" लोगों का अस्तित्व जो अपनी श्रम-शक्ति को बेचे बिना अपना अस्तित्व बनाये नहीं रख सकते।

अतिरिक्त मूल्य को बढ़ाने के दो प्रधान साधन हैं—कार्य-दिवस लम्बा करने से ("निरपेक्ष अतिरिक्त मूल्य") और आवश्यक कार्य-दिवस छोटा करने से ("सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य")। पहले साधन का विश्लेषण करते हुए मार्क्स ने एक प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किया, कि मज़दूर वर्ग ने काम के घंटे कम करने के लिए कैसे संग्राम किया और सरकार ने मज़दूरी के घंटे बढ़ाने के लिए (चौदहवीं सदी से सत्रहवीं तक) और उन्हें घटाने के लिए (उन्नीसवीं सदी का फ़ैक्टरी विधान) कैसे हस्तक्षेप किया। 'पूंजी' के प्रकाशित होने के बाद सभी सभ्य देशों के

मज़दूर आंदोलन का इतिहास इस चित्र को भरने के लिए काफ़ी नयी सामग्री देता है।

सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य के उत्पादन का विश्लेषण करते हुए मार्क्स ने उस क्रम की तीन प्रधान और ऐतिहासिक मंज़िलों की खोज की जिससे पूंजीवाद ने श्रम की उत्पादकता को बढ़ाया है,–(१) साधारण सहयोग; (२) श्रम-विभाजन और कारख़ानों में उत्पादन; (३) मशीनें और बड़े पैमाने पर उद्योग-धन्धे। मार्क्स ने किस गंभीरता से पूंजीवादी विकास के आधारभूत और विशेष लक्षणों को प्रकट कर दिया है, वह संयोगवश इस बात से मालूम हो जाता है कि रूस के तथाकथित "घरेलू" उद्योग-धंधों की जांच से पहली दो मंज़िलों का निदर्शन करने के लिए ढेर सारी सामग्री मिल जाती है। १८६७ में मार्क्स ने बड़े पैमाने के मशीन वाले उद्योग-धंधों के जिस क्रान्तिकारी प्रभाव का वर्णन किया था, वह कई "नये" देशों में, जैसे रूस, जापान आदि में, पिछले पचास साल में स्पष्ट हो गया है।

लेकिन आगे चलिये। मार्क्स ने **पूंजी के संचय** का जो विश्लेषण किया है–अर्थात् अतिरिक्त मूल्य के एक भाग का पूंजी में परिवर्तन और इस भाग का पूंजीपति की अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं या इच्छाओं की पूर्ति के लिए उपयोग न करके उसे अधिक उत्पादन में लगाना–वह अत्यन्त महत्वपूर्ण और मौलिक है। मार्क्स ने पहले के क्लासिकल राजनीतिक अर्थशास्त्र की (ऐडम स्मिथ से लेकर) धारणाओं को भ्रमपूर्ण बताया था जिनके अनुसार सभी अतिरिक्त मूल्य, जो पूंजी में परिवर्तित होता था, अस्थिर पूंजी बन जाता था। वास्तव में वह अस्थिर पूंजी तथा **उत्पादन के साधनों** में बंट जाता है। पूंजी के संपूर्ण भण्डार में अस्थिर पूंजी की अपेक्षा स्थिर पूंजी का ज़्यादा तेज़ी से बढ़ना पूंजीवाद के विकास-क्रम में और पूंजीवाद से समाजवाद के परिवर्तन-क्रम में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

पूंजी के संचय से मशीनों का मज़दूरों की जगह लेने का काम तेज़ी से बढ़ चलता है; एक सिरे पर सम्पत्ति इकट्ठी होती है तो दूसरी ओर निर्धनता का राज होता है। इस प्रकार पूंजी के संचय से तथाकथित "मज़दूरों की रिज़र्व फ़ौज" पैदा होती है, मज़दूरों का "अपेक्षाकृत

बाहुल्य" अथवा "जनसंख्या की पूंजीवादी अतिवृद्धि" होती है। इसके अनेक और विभिन्न रूप होते हैं और इससे उत्पादन को अभूतपूर्व शीघ्रता से बढ़ाने के लिए पूंजी को एक अवसर मिलता है। हम इस बात को ध्यान में रखें और उसके साथ उधार पाने की सुविधाओं और उत्पादन के साधनों में पूंजी के संचय को भी ध्यान में रखें तो हमें वह कुंजी मिल जाती है जिससे पूंजीवादी देशों में समय-समय पर होनेवाले अति-उत्पादन के **संकटों** को हम समझ सकते हैं। ये संकट औसतन पहले प्रायः प्रति दस वर्ष में होते हैं, बाद में बीच का समय ज़्यादा लम्बा और अनिश्चित हो जाता है। पूंजीवादी आधार पर जो पूंजी का संचय होता है, उससे हमें तथाकथित आदिम संचय का भेद करना चाहिए, जिसमें उत्पादन के साधनों से मज़दूर बरबस हटा दिया जाता है, किसान ज़मीन से भगा दिये जाते हैं, पंचायती ज़मीन चुरा ली जाती है, औपनिवेशिक व्यवस्था और राष्ट्रीय कर्ज़, व्यापार-रक्षा के विशेष नियम, आदि पाये जाते हैं। "आदिम संचय" से एक ओर "स्वाधीन" सर्वहारा का निर्माण होता है, दूसरी ओर पैसे के स्वामी, पूंजीपति का।

मार्क्स ने "**पूंजीवादी संचय की ऐतिहासिक प्रवृत्ति**" को बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है: "प्रत्यक्ष उत्पादकों की निर्मम दस्युता से, और अति निम्न कोटि की, जघन्य, क्षुद्र और पतित आकांक्षाओं की प्रेरणा से लूट-खसोट की जाती है।" किसान और दस्तकार की "स्वअर्जित व्यक्तिगत सम्पत्ति, कहना चाहिए, एकान्त और स्वतंत्र श्रमजीवी व्यक्ति के अपने श्रम के औज़ारों और साधनों के साथ एकीभूत हो जाने पर आधारित होती है। उसकी जगह पूंजीवादी व्यक्तिगत सम्पत्ति ले लेती है जो दूसरों के नाममात्र स्वाधीन श्रम पर, अर्थात् दूसरों की मजूरी पर, निर्भर है ... अब जिसका सम्पत्तिहरण करना है, वह अपने लिए काम करने वाला मज़दूर नहीं है वरन् बहुत से मज़दूरों का शोषण करनेवाला पूंजीपति है। यह अपहरण पूंजीवादी उत्पादन में निहित नियमों की क्रिया से, पूंजी के केन्द्रीकरण से सम्पन्न होता है। एक पूंजीपति हमेशा कई औरों की जान लेता है। इस केन्द्रीकरण अथवा कुछ पूंजीपतियों द्वारा बहुतों के अपहरण किये जाने के साथ-साथ नित बढ़ते हुए पैमाने पर श्रम

का सहकारिता वाला रूप भी विकसित होने लगता है; विज्ञान का सचेत रूप से प्राविधिक प्रयोग होता है, धरती में नियमपूर्वक खेती होने लगती है; श्रम-साधनों का ऐसे श्रम-साधनों में परिवर्तन हो जाता है जो सामूहिक रूप से ही प्रयुक्त हो सकें, साथ ही संयुक्त समाजगत श्रम के उत्पादन-साधनों के रूप में सभी उत्पादन-साधनों का उपयोग करके उनकी संख्या में कमी की जाती है; दुनिया के बाज़ार के जाल में सभी लोग फंस जाते हैं और इसके साथ पूंजीवादी शासन की अन्तर्राष्ट्रीयता बढ़ती जाती है। पूंजीशाहों की संख्या – जो इस परिवर्तन-क्रम के सभी लाभों को हथियाकर उनपर अपना एकाधिकार कर लेते हैं – जैसे-जैसे लगातार कम होती जाती है, वैसे-वैसे ही दैन्य, अत्याचार, दासता, पतन और शोषण में वृद्धि होती है। परन्तु इसके साथ उस मज़दूर वर्ग का विद्रोह भी बढ़ता जाता है जिसकी संख्या लगातार बढ़ती जाती है, और जिसमें स्वयं पूंजीवादी उत्पादनक्रम के यान्त्रिक स्वरूप से ही अनुशासन, एकता और संगठन उत्पन्न होता है। पूंजी का एकाधिकार उस उत्पादन-पद्धति के लिए श्रृंखल बन जाता है जो उसके साथ और उसकी अधीनता में पनपी और फली-फूली थी। उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण और श्रम का समाजीकरण एक ऐसे बिन्दु पर जा पहुंचता है जहां पूंजीवादी खोल में उनका रहना असम्भव हो जाता है। वह खोल फट जाती है। पूंजीवादी व्यक्तिगत सम्पत्ति की अन्तिम घड़ी आ पहुंचती है। अपहरण करनेवालों का अपहरण हो जाता है।" ('पूंजी', खंड १)

'पूंजी' के दूसरे खंड में मार्क्स का समूची सामाजिक पूंजी के पुनरुत्पादन का विश्लेषण अतिशय महत्व का है और बिल्कुल नया है। यहां भी मार्क्स ने किसी विलग घटना की चर्चा न करके एक सामूहिक घटना-क्रम पर विचार किया है; उन्होंने समाज की आर्थिक व्यवस्था के किसी अंश पर नहीं, वरन् इस सम्पूर्ण व्यवस्था पर ही विचार किया है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की उपरोक्त भूल को सुधारते हुए मार्क्स ने समूचे सामाजिक उत्पादन को दो बड़े भागों में बांटा है: (१) उत्पादन-साधनों का उत्पादन और (२) उपभोगवस्तुओं का उत्पादन। अंकों द्वारा उदाहरण देते हुए उन्होंने समूची सामाजिक पूंजी के परिचालन की – जब अपने

पिछले अनुपात-क्रम से उसका पुनरुत्पादन होता है और जब उसका संचय होता है, दोनों दशाओं में विस्तृत जांच की है। 'पूंजी' के तीसरे खंड में यह समस्या सुलझायी गयी है कि मूल्य के नियम के आधार पर **मुनाफ़े की औसत दर** कैसे बनती है। आर्थिक विज्ञान में एक बहुत बड़ी प्रगति यह है कि मार्क्स ने सामूहिक अर्थ संबंधी घटनावली और सम्पूर्ण सामाजिक अर्थ-व्यवस्था को ध्यान में रखकर अपना विश्लेषण किया है, न कि इक्का-दुक्का घटनाओं को लेकर या प्रतियोगिता के बिल्कुल छिछले पहलुओं को लेकर। इस तरह का संकुचित दृष्टिकोण निम्न कोटि के राजनीतिक अर्थशास्त्र में और उस समय के "सीमान्त उपयोग के सिद्धान्त"[11] (थियरी ऑफ़ मार्जिनल युटिलिटी) में मिलता है। पहले मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य के उद्गम का विश्लेषण किया है; उसके बाद वह मुनाफ़े, ब्याज और भूमि-कर (ग्राउंड रेण्ट) के रूप में उसके विभाजन पर विचार करते हैं। अतिरिक्त मूल्य तथा किसी काम में लगायी हुई समस्त पूंजी के अनुपात का नाम मुनाफ़ा है। "उच्च आर्गैनिक बनावट" की पूंजी (अर्थात् जिसमें सामाजिक औसत से ऊपर अस्थिर पूंजी से स्थिर पूंजी ज़्यादा होती है) से मुनाफ़े की औसत से कम दर मिलती है। "निम्न आर्गैनिक बनावट" की पूंजी से मुनाफ़े की औसत से ज़्यादा दर मिलती है। पूंजीपति उत्पादन के एक विभाग से पूंजी को हटाकर उसे दूसरे विभाग में लगाने के लिए स्वच्छन्द हैं; उनकी परस्पर प्रतियोगिता से दोनों ही दशाओं में मुनाफ़े की दर कम होकर औसत पर आ जाती है। किसी भी समाज में सभी मालों का कुल मूल्य सभी मालों की कुल क़ीमत (प्राइसेज़) के बराबर होता है। लेकिन अलग-अलग कारबार में और उत्पादन के अलग-अलग विभागों में प्रतियोगिता के फलस्वरूप मालों का विक्रय उनके मूल्य के अनुसार नहीं होता वरन् **उत्पादन की क़ीमतों** के अनुसार होता है। ये कीमतें लगायी हुई पूंजी और औसत मुनाफ़े के जोड़ के बराबर होती हैं।

इस प्रकार मार्क्स ने मूल्य संबंधी नियम के आधार पर ही इस बात की व्याख्या की है कि क़ीमत और मूल्य में जो असंदिग्ध और अविवादास्पद भेद है, वह क्यों होता है और मुनाफ़े में समानता क्यों

होती है—क्योंकि सारे मालों के मूल्यों का जोड़ क़ीमतों के जोड़ से मेल खाता है। फिर भी मूल्य (जो सामाजिक होता है) और क़ीमत (जो अलग-अलग होती है) का परस्पर सामंजस्य सीधे साधारण ढंग से नहीं होता वरन् उसका क्रम बहुत ही टेढ़ा-मेढ़ा होता है। इसलिए ऐसे समाज में जहां माल के पैदा करने वाले लोग अलग-अलग हों, और जो केवल बाज़ार के ही माध्यम से एक-दूसरे के साथ जुड़े हों, यह स्वाभाविक है कि नियम एक औसत, आम और सामूहिक नियम के रूप में प्रकट हो, जिसमें कभी इधर और कभी उधर होनेवाली पथ-विच्युति एक दूसरे की कमी को पूरा करे।

श्रम की उत्पादकता में बढ़ती का अर्थ है अस्थिर पूंजी के मुक़ाबले स्थिर पूंजी की और भी तेज़ बढ़ती। अतिरिक्त मूल्य का केवल संबंध अस्थिर पूंजी से ही होता है, इसलिए यह स्पष्ट है कि मुनाफ़े की दर में (अतिरिक्त मूल्य तथा सम्पूर्ण पूंजी, न कि पूंजी के एक अस्थिर भाग के ही अनुपात में) गिरने की प्रवृत्ति होती है। मार्क्स ने इस प्रवृति और इसे छिपाने अथवा निष्फल करनेवाली कुछेक परिस्थितियों का विस्तृत विश्लेषण किया है। 'पूंजी' के जिस अत्यंत रोचक तीसरे भाग में महाजनी पूंजी, व्यापारी पूंजी और मुद्रा पूंजी की विवेचना की गई है, उसका यहां पर विवरण न देकर मैं उसके सबसे महत्वपूर्ण भाग **भूमि-कर** के सिद्धान्त को लूंगा। ज़मीन नाकाफ़ी होने से और पूंजीवादी देशों में सारी ज़मीन पर अलग-अलग मालिकों का निजी स्वामित्व होने से, खेती की पैदावार की उत्पादन-क़ीमत उत्पादन की लागत से निश्चित होती है। परन्तु इस उत्पादन की लागत का हिसाब औसत दर्जे की ज़मीन को ध्यान में रखकर नहीं लगाया जाता, उसका हिसाब माल को बाज़ार ले आने की औसत परिस्थितियों को ध्यान में रखकर नहीं लगाया जाता, वरन् सबसे ख़राब धरती और सबसे अधम परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह हिसाब लगाया जाता है। इस क़ीमत में और अच्छी ज़मीन (या अच्छी परिस्थितियों) के उत्पादन की क़ीमत में जो अन्तर होता है, वह **भेदकारी** भूमि-कर कहलाता है। उसका विस्तृत विश्लेषण करते हुए और यह दिखाते हुए कि खेतों की उर्वरता में अन्तर होने से और धरती पर

पूंजी की जो मात्रा लगायी जाती है, उसमें अन्तर होने से यह कैसे उत्पन्न होता है, मार्क्स ने पूरी तरह रिकार्डो की भूल को प्रकट कर दिया है जिसका विचार था कि भेदकारी भूमि-कर तभी मिलता है जब अच्छी से बुरी धरती की ओर क्रमशः संक्रमण होता है। ('अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त' भी देखिये जिसमें रौडबर्टस के मत की समालोचना विशेष ध्यान देने योग्य है।) इसके विपरीत कृषि-विद्या में उन्नति होने से, नगरों की वृद्धि आदि कारणों से प्रतिकूल संक्रमण हो सकते हैं, धरती की एक श्रेणी बदल कर दूसरी हो सकती है। "धरती की नित-न्यून उर्वरता का नियम" जो दुष्टता से प्रकृति पर पूंजीवाद के दोषों, संकीर्णता और असंगति का दोषारोपण करता है, भारी भूल है। इसके सिवा सभी उद्योग-धंधों और साधारण रूप से राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में मुनाफ़े की समानता पहले ही प्रतियोगिता करने की स्वाधीनता को, एक धंधे से दूसरे धंधे में पूंजी की स्वतंत्र गति को मान लेती है। परन्तु भूमि पर निजी स्वामित्व एकाधिकार को जन्म देकर, इस स्वतंत्र गति में बाधक होता है। इस एकाधिकार के कारण जहां पूंजी की निम्न आर्गैनिक बनावट होती है और फलतः अलग-अलग मुनाफ़े की ऊंची दर मिल सकती है, वहां खेती की पैदावार में मुनाफ़े की दर निर्द्वंद्व रूप से बराबर नहीं की जा सकती। अपने हाथ में एकाधिकार रखने से ज़मींदार अपनी पैदावार की क़ीमत औसत से ऊंची रख सकता है और यह एकाधिकार से निश्चित होने वाली क़ीमत **निरपेक्ष** भूमि-कर का उद्गम है। जब तक पूंजीवाद है, तब तक भेदकारी भूमि-कर का अन्त नहीं हो सकता। लेकिन निरपेक्ष भूमि-कर का तो पूंजीवाद के रहते हुए भी अन्त किया जा **सकता है**; उदाहरण के लिए भूमि के राष्ट्रीयकरण से, भूमि को राष्ट्र की सम्पत्ति बनाकर। भूमि पर राष्ट्र का अधिकार होने से निजी ज़मींदारों के एकाधिकार का अन्त हो जायेगा। इसका फल यह होगा कि कृषि में भी अधिक संगतरूप से और अधिक पूर्णता से मुक्त प्रतियोगिता चल सकेगी। इसीलिए, जैसा कि मार्क्स ने कहा है, इतिहास में आमूल-परिवर्तनवादी पूंजीपति बार-बार इस प्रगतिशील पूंजीवादी मांग को लेकर आगे आये हैं कि भूमि पर राष्ट्र का अधिकार हो। लेकिन इससे अधिकांश

पूंजीपतियों को डर लगता है क्योंकि यह एक दूसरे एकाधिकार को भी निकट से "स्पर्श" करती है, जो आजकल विशेष रूप से महत्वपूर्ण और "कोमल" है—साधारण रूप से उत्पादन के साधनों पर एकाधिकार। (एंगेल्स के नाम अपने २ अगस्त १८६२ के पत्र में मार्क्स ने पूंजी पर मुनाफ़े की औसत दर और निरपेक्ष भूमि-कर के सिद्धान्त की बहुत ही सरल, सुस्पष्ट और संक्षिप्त व्याख्या की है। देखिये 'पत्र-व्यवहार', खंड ३, पृष्ठ ७७-८१ ; साथ ही मार्क्स का ६ अगस्त १८६२ का पत्र, वहीं, पृष्ठ ८६-८७।) भूमि-कर के इतिहास के सम्बन्ध में मार्क्स के विश्लेषण की ओर ध्यान देना आवश्यक है। इस संबंध में यह बताना भी बड़े महत्व का है कि श्रम-कर (जब किसान ज़मींदार की ज़मीन पर काम करके अतिरिक्त पैदावार करता है) वस्तु या धान्य-कर का रूप किस तरह लेता है (किसान अपनी भूमि पर अतिरिक्त पैदावार करके उसे "आर्थिक से इतर नियंत्रण" द्वारा बाध्य होकर ज़मींदार को सौंप देता है)। उसके बाद यह वस्तु-कर मुद्रा-कर में परिवर्तित होता है (वही वस्तु-कर जो माल उत्पादन के विकास के कारण पैदावार के रूप में जो पुराने रूस का कर था, उसी की क़ीमत मुद्रा में निश्चित कर दी जाती है)। अन्त में वह पूंजीवादी कर में परिवर्तित होता है जब किसान की जगह वह पूंजीपति आ जाता है जो पैसे पर मजूरी करनेवालों की सहायता से खेती करता है। "पूंजीवादी भूमि-कर की उत्पत्ति" के विश्लेषण के साथ-साथ **कृषि में पूंजीवाद के विकास** के संबंध में मार्क्स ने कुछ बड़े मार्के के विचार प्रकट किये थे, उनपर भी ध्यान देना चाहिए। रूस जैसे पिछड़े हुए देशों पर वे विशेष रूप से लागू होते हैं। "अपने को मजूरी पर उठा देनेवाले, दिन में काम करनेवाले, संपत्तिहीन मज़दूरों का वर्ग बनने के साथ साथ ही धान्य रूप में कर मुद्रा-कर में बदलता है, बल्कि पहले से उसकी आशा होने लगती है। उनके इस अभ्युदय-काल में, जब यह वर्ग जहां-तहां अनियमित ढंग से प्रकट होता है, तो यह प्रथा भी अवश्य चल पड़ती है कि धान्य या मुद्रा के रूप में कर देने वाले धनी किसान अपने लाभ के लिए खेतिहर मजूरों का शोषण करते हैं, जैसे कि सामन्त-युग में धनी कम्मी अपने लाभ के लिए कम्मियों से काम लेते थे। इस प्रकार

वे धीरे-धीरे इस योग्य बन जाते हैं कि कुछ धन इकट्ठा कर सकें और अपने को भावी पूंजीपतियों में परिवर्तित कर सकें। इस प्रकार, स्वयं खेती करनेवाले पुराने भू-स्वामियों के भीतर ही पूंजीवादी पट्टेदारों के लिए परिस्थितियां तैयार होती हैं। 'इन काश्तकारों का विकास खेती के बाहर के पूंजीवादी उत्पादन के विकास पर निर्भर होता है।" ('पूंजी', खंड ३, पृष्ठ ३३२) ... "खेतिहरों के एक भाग के अपहरण किये जाने से और उनके बेदख़ल होने से औद्योगिक पूंजी के लिए मज़दूर, उनकी जीविका के साधन, और श्रम के औज़ार ही ख़ाली नहीं हो गये वरन् उससे घर का बाज़ार भी बना।" ('पूंजी', खंड १, पृष्ठ ७७८) इसके बाद खेतिहर जनता की ग़रीबी और तबाही से पूंजी के लिए मज़दूरों की रिज़र्व फ़ौज बनती है। हर पूंजीवादी देश में "खेतिहर जनता का एक भाग शहर के या कारख़ाने में काम करने वाले सर्वहारा वर्ग में परिवर्तित होने की सीमा पर सदा ही तैयार रहता है (कारख़ानों से यहां सभी ग़ैर-खेतिहर धंधों से मतलब है)। इस प्रकार अपेक्षाकृत अतिरिक्त जनसंख्या का यह स्रोत सदा बहा करता है ... इसलिए खेतिहर मजूर को कम से कम पैसा मिलता है और उसका एक पैर निराश्रयता के दलदल में बना ही रहता है।" ('पूंजी', खंड १, पृष्ठ ६६८) जिस भूमि को किसान जोतता-बोता है, उसपर उसका निजी स्वामित्व ही छोटे पैमाने के उत्पादन का आधार है और इस उत्पादन की बढ़ती, उसके क्लासिकल रूप प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। परन्तु इस तरह का टुटपुंजिया उत्पादन समाज और उत्पादन के संकुचित और पुराने ढांचे में ही संभव है। पूंजीवाद में "किसानों के शोषण का केवल रूप ही औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के शोषण से भिन्न है। शोषक एक ही है: पूंजी। अलग-अलग पूंजीपति रेहन और ब्याज से अलग-अलग किसानों का शोषण करते हैं; पूंजीवादी वर्ग राजकीय करों द्वारा किसान वर्ग का शोषण करता है।" ('फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष') "अब किसान की थोड़ी सी ज़मीन उससे मुनाफ़ा, ब्याज और कर लेने के लिए पूंजीपति के पास बहाने भर का काम देती है; ज़मीन से किसान अपनी जीविका कैसे वसूल करता है, यह ज़िम्मा उसका है।" ('अठारहवीं ब्रूमेयर') किसान अपनी

कमाई का एक भाग भी नियमित रूप से पूंजीवादी समाज को अर्थात् पूंजीवादी वर्ग के हवाले कर देता है और "निजी स्वामित्व के बहाने आयरिश काश्तकार के दर्जे तक पहुंच जाता है"। ('फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष') ऐसा क्यों होता है कि "जिन देशों में छोटे-छोटे काश्तकारों की संख्या अधिक होती है, वहां पूंजीवादी उत्पादन-पद्धति वाले देशों की अपेक्षा अनाज की क़ीमत कम होती है"? ('पूंजी', खंड ३, पृष्ठ ३४०) इसका उत्तर यह है कि अपनी अतिरिक्त पैदावार का एक भाग किसान समाज को (अर्थात् पूंजीवादी वर्ग को) यों ही दान कर देता है। (अनाज और खेती से पैदा होनेवाली दूसरी चीज़ों की) "यह कम क़ीमत उत्पादकों की निर्धनता का भी परिणाम है और उनके श्रम की उत्पादिता का परिणाम किसी भी तरह नहीं है।" (वहीं।) पूंजीवाद में टुटपुंजिया खेती, जो टुटपुंजिया उत्पादन का साधारण रूप है, निर्जीव होकर मुरझा जाती है और समाप्त हो जाती है। "छोटे किसानों की सम्पत्ति स्वभाव से ही इस संभावना को दूर रखती है कि श्रम के उत्पादन की सामाजिक शक्तियों का विकास हो, श्रम के सामाजिक रूप हों, पूंजियों का सामाजिक केन्द्रीकरण हो, बड़े पैमाने पर गोरू पाले जायं और कृषि में विज्ञान का अधिकाधिक उपयोग किया जाय। ब्याज और कर-व्यवस्था उसे हर जगह निर्धन बनाएगी। ज़मीन ख़रीदने में पूंजी के ख़र्च के कारण खेती से यह पूंजी खिंच आती है उसके साथ उत्पादन के साधनों का विराट ह्रास और स्वयं उत्पादकों का अलगाव पैदा होता है।" (सहकारी-संस्थाएं अर्थात् छोटे किसानों की जमातें असाधारण रूप से प्रगतिशील पूंजीवादी भूमिका पूरी करती हुई भी इस प्रवृत्ति को निर्बल बनाती हैं, उसका नाश नहीं करतीं। इसके सिवा यह न भूलना चाहिए कि ये सहकारी-संस्थाएं धनी किसानों के लिए बहुत कुछ करती हैं, और आम ग़रीब किसानों के लिए बहुत कम, प्रायः कुछ नहीं करतीं। यह भी न भूलना चाहिए कि ये संस्थाएं स्वयं खेत मज़दूरों की शोषक हो जाती हैं।) "मनुष्य की शक्ति का भारी अपव्यय भी होता है। उत्पादन की परिस्थितियों में ह्रास की निरन्तर वृद्धि और उत्पादन के साधनों की

क़ीमत में बढ़ती छोटे किसानों की संपत्ति का आवश्यक नियम है।" उद्योग-धंधों की भांति कृषि में भी "उत्पादकों की शहादत" की क़ीमत देकर ही पूंजीवाद उत्पादन-क्रम को बदलता है। "खेतिहर मजूरों के बड़े-बड़े इलाक़ों में फैल जाने से उनकी विरोध करने की शक्ति टूट जाती है जब कि केन्द्रीकरण से शहर के कमकरों की शक्ति बढ़ती है। जैसे शहर के उद्योग-धंधों में, वैसे ही वर्तमान पूंजीवादी कृषि में श्रम-शक्ति को ही नष्ट करने और निर्बल किये जाने से ही चालू श्रम की बढ़ी हुई उत्पादकता और गतिशीलता प्राप्त की जाती है। इसके सिवा पूंजीवादी कृषि में सभी उन्नति मज़दूरों को ही लूटने की नहीं, वरन् धरती को भी लूटने की कला में उन्नति है ... इसलिए पूंजीवादी उत्पादन सभी तरह की सम्पत्ति के मूल स्रोत – धरती और मजूर – को निचोड़ कर ही टेकनोलाजी का विकास करता है और विभिन्न क्रमों को एक ही सामाजिक क्रम में मिलाता है।" ('पूंजी', खंड १, अध्याय १३ का अन्त)

समाजवाद

ऊपर की बातों से स्पष्ट है कि मार्क्स ने एकमात्र तत्कालीन समाज की गति के आर्थिक नियम के ही बल पर यह निष्कर्ष निकाला है कि पूंजीवादी समाज अनिवार्य रूप से समाजवादी समाज में परिवर्तित हो जायेगा। समाजवाद के आगमन की अनिवार्यता का मुख्य भौतिक आधार श्रम का समाजीकरण है जो अपने असंख्य रूपों में तीव्र और तीव्रतर गति से आगे बढ़ता रहा है। मार्क्स की मृत्यु के बाद के पचास वर्षों में, बड़े पैमाने पर उत्पादन के विकास में, पूंजीपतियों के कार्टेलों, सिण्डीकेटों और ट्रस्टों में, साथ ही वित्तीय पूंजी (फ़ैनेन्शल कैपिटल) की सीमारेखाओं और शक्ति के अतिप्रसार में विशेष स्पष्टता से यह वृद्धि प्रकट होती रही है। इस परिवर्तन की बौद्धिक और नैतिक प्रेरक-शक्ति, उसको भौतिक रूप से संपन्न करनेवाली शक्ति, सर्वहारा वर्ग है जिसे पूंजीवाद ने ही शिक्षित किया है। पूंजीपतियों के विरुद्ध सर्वहारा वर्ग का संघर्ष नाना रूप धारण करता हुआ,

जो नित बहुमुखी होते जाते हैं, अनिवार्यतः एक राजनीतिक संघर्ष हो जाता है जिसका ध्येय सर्वहारा वर्ग द्वारा राजनीतिक शक्ति को जीतना होता है ("सर्वहारा अधिनायकत्व")। उत्पादन के समाजीकरण से उत्पादन के साधनों का समाज के हाथ में आ जाना अनिवार्य है और "अपहरण करनेवाले स्वयं अपहरण किये जायेंगे"। इस परिवर्तन का सीधा परिणाम यह होगा कि श्रम की उत्पादिता में विशाल वृद्धि होगी, मजूरी के घंटे कम होंगे, बचे-खुचे और नष्टप्राय टुटपुंजिये और अलग-अलग उत्पादन के बदले सामूहिक और उन्नत श्रम होगा। अन्त में पूंजीवाद, कृषि और उद्योग-धंधों के संबंध को तोड़ देता है; लेकिन साथ ही अपने उच्चतम विकास के होते-होते, वह दोनों के बीच का संबंध स्थापित करने के लिए नये सूत्र तैयार करता है। सचेत रूप से विज्ञान के उपयोग, सामूहिक श्रम के मेल और जनसंख्या के पुनर्वितरण के आधार पर वह कृषि और उद्योग-धंधों को मिलाता है (वह एक साथ ही देहात के अलगाव और अकेलेपन को, असभ्यता और बड़े-बड़े शहरों में विशाल जन-समूहों के अस्वाभाविक केन्द्रीकरण को समाप्त कर देता है)। आधुनिक पूंजीवाद के उच्चतम रूपों द्वारा कुटुम्ब के एक नये प्रकार, स्त्रियों की स्थिति और नयी पीढ़ी की शिक्षा-दीक्षा में परिवर्तन की तैयारी हो रही है। वर्तमान समाज में स्त्रियों और बच्चों द्वारा मज़दूरी, पूंजीवाद द्वारा दादा-पंथी कुटुम्ब का नष्ट-भ्रष्ट होना आवश्यक रूप से बड़े ही भयावह, सर्वनाशी और जघन्य रूपों में प्रकट होते हैं। फिर भी "... वर्तमान उद्योगधंधे घर के बाहर उत्पादन-क्रम में स्त्रियों, नौजवानों और छोटे छोटे लड़के-लड़कियों को महत्वपूर्ण भाग देकर कुटुम्ब और स्त्री-पुरुष के संबंध के एक उच्चतर रूप के लिए एक आर्थिक आधार का निर्माण करते हैं। कुटुम्ब के ट्यूटौनिक-ईसाई रूप को अचल और त्रिकाल-सत्य समझना वैसे ही भ्रमपूर्ण है जैसे प्राचीन रोम, ग्रीस के कुटुम्ब को या कुटुम्ब के पूर्वी रूपों को ऐसा समझना। सम्मिलित रूप से ये ऐतिहासिक विकास की श्रृंखलाएं हैं। यह भी स्पष्ट है कि सभी उम्र के स्त्री और पुरुष—दोनों ही तरह के व्यक्तियों से सामूहिक रूप में काम करने वाला गुट बनता है, इस बात से अवश्य ही अनुकूल परिस्थितियों में उसे मानवीय

विकास का कारण बन जाना चाहिए। यद्यपि अपने स्वतः विकसित, पाशविक पूंजीवादी रूप में, जहां मज़दूर उत्पादन-क्रम के लिए होता है, उत्पादन-क्रम मज़दूर के लिए नहीं होता, यह स्थिति भ्रष्टाचरण और दासता का मूल है।" ('पूंजी', खंड १, अध्याय १३ का अन्त।) कारख़ानों के चलने से "भविष्य की शिक्षा का बीज बोया जा रहा है, ऐसी शिक्षा का बीज, जो एक ख़ास उम्र के बाद हर बच्चे के लिए उत्पादन-श्रम के साथ शिक्षा और व्यायाम का मेल कर सके, केवल इसलिए नहीं कि यह सामाजिक उत्पादन को बेहतर बनाने का एक साधन होगा वरन् इसलिए कि मनुष्यों के पूर्ण विकास का यही एक मार्ग है"। (वहीं।) इसी ऐतिहासिक आधार पर—न केवल अतीत की व्याख्या करने के अर्थ में, बल्कि निर्भीक भविष्यवाणी और उसकी उपलब्धि के लिए साहसपूर्ण अमली कार्रवाई करने के अर्थ में भी मार्क्स का समाजवाद जाति और राज्य की समस्याओं की विवेचना करता है। जातियां सामाजिक विकास के पूंजीवादी युग की अनिवार्य उपज तथा अनिवार्य रूप हैं। मज़दूर वर्ग में तब तक शक्ति और परिपक्वता नहीं आ सकती थी जब तक वह "अपने को जाति (नेशन) का अंग न बना ले", जब तक कि वह "जातीय (नेशनल)" न बने ("यद्यपि इस शब्द के पूंजीवादी अर्थ में नहीं")। परन्तु पूंजीवाद के विकास से जातियों के बीच की दीवारें अधिकाधिक ढहने लगती हैं, जातीय अलगाव दूर होता है और जातीय विरोध के बदले वर्ग विरोध का जन्म होता है। इसलिए विकसित पूंजीवादी देशों में यह बिल्कुल सच है कि "मज़दूरों का कोई देश नहीं है" और सभ्य देशों के मज़दूरों की "संयुक्त कार्यवाही सर्वहारा वर्ग की मुक्ति की पहली शर्तों में है" ('कम्युनिस्ट घोषणापत्र')। राज्य संगठित हिंसा का नाम है; समाज के विकास की एक अवस्था में, (जब वह ऐसे वर्गों में बंट गया जिसमें समझौता न हो सकता था) अनिवार्यतः उसका जन्म हुआ जब बिना ऐसे "अधिकार" के जो समाज के ऊपर और किसी हद तक उससे परे हो, उसका अस्तित्व असम्भव था। वर्ग-संबंधी अन्तर्विरोधों से उत्पन्न होकर, यह राज्य "सबसे शक्तिशाली और आर्थिक दृष्टि से प्रधान वर्ग का राज्य हो जाता है। यह वर्ग राज्य की सहायता

से राजनीतिक दृष्टि से भी प्रधान वर्ग बन जाता है। और इस प्रकार पीड़ित वर्ग को दबाने और उसका शोषण करने के लिए उसे नये साधन मिल जाते हैं। इस प्रकार प्राचीन राज्य गुलामों के मालिकों का राज्य था जिससे गुलामों को दबाया जा सके जैसे कि सामन्ती राज्य कम्मियों और भूदासों को दबाने के लिए अभिजात वर्ग का अस्त्र था, और जैसे कि वर्तमान प्रतिनिधिपूर्ण राज्य पूंजी द्वारा मज़दूरों के शोषण का अस्त्र है।" (एंगेल्स, 'परिवार, निजी संपत्ति तथा राज्यसत्ता की उत्पत्ति', जिसमें लेखक ने अपने और मार्क्स के विचारों की व्याख्या की है।) यही स्थिति जनवादी जनतंत्र में भी, सबसे स्वाधीन और प्रगतिशील पूंजीवादी राज्य में भी है। अन्तर केवल रूप का होता है (सरकार का संबंध स्टॉक एक्सचेंज से हो जाता है और अधिकारी वर्ग तथा प्रेस को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से घूस दे दी जाती है इत्यादि)। समाजवाद वर्गों का अंत करते हुए, इसी साधन से, राज्य का भी अन्त कर देगा। 'ड्यूहरिंग मत-खण्डन' में एंगेल्स ने लिखा है—"राज्य का यह पहला काम, जब वह वास्तव में पूर्ण समाज का प्रतिनिधि बनकर आता है और समाज के नाम पर उत्पादन के साधनों पर अधिकार कर लेता है, राज्य के नाते उसका अन्तिम स्वाधीन कार्य भी होता है। एक क्षेत्र के बाद दूसरे में राज्य का सामाजिक संबंधों में हस्तक्षेप व्यर्थ हो जाता है और उसके बाद अपने आप बंद हो जाता है। लोगों के शासन के स्थान पर वस्तुओं का नियंत्रण और उत्पादन-क्रमों का निर्देश आ जाता है। राज्यसत्ता का 'अन्त नहीं किया जाता' वह स्वयं क्रमशः नष्ट हो जाती है।" "उत्पादकों के स्वतंत्र और समान सहयोग के आधार पर जिस समाज को उत्पादन का पुनर्संगठन करना है वह समाज राज्यसत्ता की सारी मशीनरी को पुरानी चीज़ों के अजायब घर में, चर्खे और पीतल की कुल्हाड़ी के साथ रख देगा। और यही उसके लिए उचित स्थान भी होगा।" (एंगेल्स: 'परिवार, निजी संपत्ति तथा राज्यसत्ता की उत्पत्ति'।)

अन्त में छोटे किसानों के संबंध में, जो अपहरण करनेवालों के अपहरण किये जाने के समय बने रहेंगे, मार्क्सीय समाजवाद का दृष्टिकोण एंगेल्स के एक कथन से प्रकट होता है जो मार्क्स के मत को

व्यक्त करता है: "जब हमारे हाथ में राज्य-सत्ता आ जायगी तब हम छोटे किसानों को (मुआवज़े देकर या बिना दिये) बलपूर्वक अपहरण करने का सोचेंगे भी नहीं जैसा कि बड़े ज़मींदारों के संबंध में हमें करना पड़ेगा। छोटे किसानों में हमारा सबसे पहला काम यह होगा कि बलपूर्वक नहीं वरन् उदाहरणों से और सामाजिक सहायता देकर उनके निजी उत्पादन और निजी स्वामित्व को सहकारी उत्पादन और सहकारी स्वामित्व में परिवर्तित कर दें। उस समय छोटे किसानों को इस परिवर्तन के लाभ दिखाने के लिए हमारे पास काफ़ी साधन होंगे और इन लाभों को हमें उन्हें अभी से समझाना चाहिए।" (एंगेल्स: 'पश्चिम में कृषि की समस्या', पृष्ठ १७, अलेक्सेयेवा द्वारा सम्पादित, रूसी अनुवाद में ग़लतियां हैं। सबसे पहले «*Neue Zeit*»[12] में प्रकाशित)

सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष की कार्यनीति

१८४४-१८४५ में ही यह पता लगाकर कि पहले के पदार्थवाद का एक मुख्य दोष यह था कि उसने प्रत्यक्ष क्रान्तिकारी कार्यवाही की परिस्थितियों और महत्व को न समझा था, मार्क्स ने जीवन भर अपने सैद्धान्तिक कार्यों के साथ सर्वहारा वर्ग-संघर्ष की कार्यनीति की समस्याओं की ओर लगातार ध्यान दिया। मार्क्स के **सभी** ग्रंथों में, विशेषकर १६१३ में प्रकाशित एंगेल्स से उनके पत्र-व्यवहार की चार जिल्दों में, इस विषय पर बहुत बड़ी सामग्री उपलब्ध है। यह सामग्री एकत्रित और व्यवस्थित होने को है; उसका अध्ययन और जांच करनी है। इसी कारण से इस बात पर ज़ोर देना आवश्यक है कि मार्क्स ने **इस** पहलू से रहित पदार्थवाद को सही अर्थ में अपूर्ण, एकांगी और निर्जीव समझा था। तो भी, हमें इस संबंध में कुछ बहुत ही साधारण और संक्षिप्त बातों से संतोष करना होगा। अपने पदार्थवादी-द्वंद्ववादी दृष्टिकोण के साधारण सिद्धान्तों के नितान्त अनुकूल ही मार्क्स ने सर्वहारा कार्यनीति के मूल कर्तव्य की व्याख्या की थी। किसी भी समाज के सभी वर्गों के निरपवाद रूप से

सभी परस्पर सम्बन्धों की सम्पूर्णता को वस्तुगत रूप से ध्यान में रख कर ही, और फलतः समाज के विकास की वस्तुगत अवस्था को ध्यान में रख कर ही, साथ ही उस समाज से दूसरे समाजों के परस्पर संबंधों को ध्यान में रख कर ही, अग्रसर वर्ग की सही कार्यनीति का आधार मिल सकता है। साथ ही सभी वर्गों और देशों को जड़ रूप में नहीं वरन् गतिशील रूप में देखना चाहिए, अर्थात् वे स्थिर नहीं हैं वरन् गतिशील हैं (उनकी गति के नियम प्रत्येक वर्ग के अस्तित्व की आर्थिक परिस्थितियों से निश्चित होते हैं)। इसके बाद इस गति को भूतकालीन दृष्टिकोण से नहीं, वरन् भविष्य के दृष्टिकोण से भी देखना चाहिए। उसे "विकासवादियों" की निम्न धारणा के अनुसार ही नहीं, जिन्हें केवल धीमे परिवर्तन दिखाई देते हैं, वरन् द्वंद्ववादी दृष्टिकोण से देखना चाहिए। मार्क्स ने एंगेल्स को लिखा था: "इस कोटि की महान् प्रगति में बीस वर्ष एक दिन से अधिक नहीं हैं—अतएव आगे चलकर ऐसे दिन आ सकते हैं जो बीस-बीस वर्षों के बराबर हों।" ('पत्र-व्यवहार', खंड ३, पृष्ठ १२७)[13] प्रगति की हर मंजिल में, हर क्षण, सर्वहारा वर्ग की कार्यनीति को मानव-इतिहास की वस्तुगत और अनिवार्य गतिशीलता (द्वन्द्ववाद) को ध्यान में रखना चाहिए। उसे एक ओर राजनीतिक शिथिलता के दिनों में या उन दिनों में जब नामचार के "शान्तिपूर्ण" विकासपथ पर "नौ दिन चले अढ़ाई कोस" की प्रगति हो रही हो, अग्रसर वर्ग की शक्ति, वर्ग-चेतना, और संघर्ष-सामर्थ्य को बढ़ाना चाहिए। दूसरी ओर इस वर्ग के आन्दोलन के "अन्तिम ध्येय" की दिशा में इस कार्य का संचालन करना चाहिये और उसमें वह शक्ति उत्पन्न करनी चाहिए जिससे कि उन महान् दिनों में "जो बीस-बीस वर्षों के बराबर हों", वह महान् कार्यों को प्रत्यक्ष रूप से सम्पन्न कर सके। इस संबंध में मार्क्स के दो तर्क विशेष महत्व के हैं। इनमें से एक 'दर्शनशास्त्र की निर्धनता' में है और उसका संबंध सर्वहारा वर्ग के आर्थिक संघर्ष और आर्थिक संगठनों से है; दूसरा, 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में है और उसका संबंध सर्वहारा वर्ग के राजनीतिक कार्यों से है। पहला इस प्रकार है: "बड़े पैमाने के उद्योग-धंधों से एक ही जगह ऐसे आदमियों की भीड़ जुट

जाती है जो एक दूसरे से अपरिचित होते हैं। परस्पर प्रतियोगिता के कारण उनके हित अलग-अलग होते हैं। लेकिन अपनी मजूरी बनाये रखने की आवश्यकता स्वामी के विरुद्ध एक समान हित का कारण बनती है और उन्हें विरोध की समान विचार-भूमि पर एक कर देती है। यह मेल ... पहले अलग-अलग होता है, उसके बाद उससे गुट बनते हैं ... और संयुक्त पूंजी से सदा मुकाबला होने पर उनके लिए मजूरी बनाये रखने से अपनी जमात को बनाये रखना ज़्यादा ज़रूरी हो जाता है ... इस संघर्ष में—एक अच्छे ख़ासे गृहयुद्ध में—आगामी युद्ध के लिए सभी आवश्यक तत्व विकसित और संयुक्त होते हैं। एक बार इस बिन्दु तक पहुंचने पर जमात राजनीतिक रूप ग्रहण कर लेती है।" यहां पर बीसों वर्ष के लिए, उस लम्बी अवधि के लिए जब मज़दूर "भावी संग्राम" की तैयारी करते हैं, हमें आर्थिक संघर्ष और ट्रेड-यूनियन आन्दोलन का कार्यक्रम और उसकी कार्यनीति का निर्देश मिल जाता है। इसके साथ-साथ ब्रिटेन के मज़दूर-आन्दोलन का हवाला देते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने जो कई बातें कही हैं, हमें उनकी ओर भी ध्यान देना चाहिए। उन्होंने बताया है कि औद्योगिक "समृद्धि" के फलस्वरूप "मज़दूरों को ख़रीद लेने के प्रयत्न किये जाते हैं" ('पत्र-व्यवहार', खंड १, पृष्ठ १३६)[14] जिससे कि वे संघर्ष से हट जायें। उन्होंने बताया है कि कैसे साधारणतः यह समृद्धि "मज़दूरों का नैतिक पतन कर देती है" (खंड २, पृष्ठ २१८); कैसे ब्रिटेन के सर्वहारा वर्ग का "पूंजीवादीकरण" हो रहा है; कैसे "इस सबसे अधिक पूंजीवादी जाति (अंग्रेज़) का चरम ध्येय एक पूंजीवादी अभिजात-वर्ग और उसके साथ पूंजीवादी सर्वहारा वर्ग तथा एक पूंजीवादी वर्ग की स्थापना करना है" (खंड २, पृष्ठ २९०)[15]; कैसे ब्रिटिश सर्वहारा वर्ग की "क्रान्तिकारी शक्ति" छीजती जाती है (खंड ३, पृष्ठ १२४); कैसे काफ़ी समय तक राह देखनी होगी "इसके पहले कि ब्रिटिश मज़दूर प्रकटतः अपने पूंजीवादी पतन से बच सकें" (खंड ३, पृष्ठ १२७); कैसे ब्रिटिश मज़दूर आन्दोलन में "चार्टिस्टों का दम नहीं है"[16] (१८६६, खंड ३, पृष्ठ ३०५)[17]; कैसे ब्रिटिश मज़दूरों के नेता "आमूल-परिवर्तनवादी पूंजीवादी

ग्रौर मज़दूर" के बीच की सी कोई चीज़ बनते जा रहे हैं (होलियोक के सम्बन्ध में, खंड ४, पृष्ठ २०६); कैसे ब्रिटिश एकाधिकार के कारण, ग्रौर जब तक वह एकाधिकार बना रहेगा, तब तक "ब्रिटिश मज़दूर टस से मस न होंगे" (खंड ४, पृष्ठ ४३३)[18]। यहां पर मज़दूर ग्रान्दोलन की साधारण प्रगति **(ग्रौर उसके परिणाम)** के प्रसंग में ग्रार्थिक संघर्ष की कार्यनीति पर बड़े ही व्यापक, ग्रनेकांगी, द्वंद्ववादी ग्रौर सच्चे क्रान्तिकारी दृष्टिकोण से विचार किया गया है।

राजनीतिक संघर्ष की कार्यनीति पर 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' ने यह ग्राधारभूत मार्क्सीय धारणा पेश की थी: "कम्युनिस्ट मज़दूर वर्ग के तात्कालिक उद्देश्यों ग्रौर हितों के लिए लड़ते हैं; किन्तु वर्तमान ग्रान्दोलन के साथ-साथ वे इस ग्रान्दोलन के भविष्य पर भी ध्यान रखते हैं, उसके भावी हितों के लिए भी लड़ते हैं।" इसीलिए १८४८ में मार्क्स ने "किसान क्रान्ति" पोलिश पार्टी का समर्थन किया था, "जिस पार्टी ने १८४६ में क्रैको विद्रोह का सूत्रपात किया था।" १८४८-१८४९ में जर्मनी में उन्होंने उग्र क्रान्तिकारी जनवाद का समर्थन किया ग्रौर बाद में, जो कुछ उन्होंने कार्यनीति के बारे में कहा था, उसका एक शब्द भी वापस नहीं लिया। उनकी दृष्टि में जर्मन पूंजीपति "पहले से ही जनता से दग़ा करने के फेर में थे" (केवल किसानों से समझौता करके ही पूंजीपति पूरी तरह ग्रपनी लक्ष्य-सिद्धि कर सकते थे) "ग्रौर समाज की पुरानी व्यवस्था के ताजपोश प्रतिनिधियों से समझौता करने का उनमें रुझान था।" पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति के समय जर्मन पूंजीपतियों की वर्ग-स्थिति का यह संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार ग्रौर बातों के साथ उस पदार्थवाद का एक नमूना है जो समाज को गतिशील रूप में देखता है, ग्रौर गति के उसी रूप में नहीं जिसकी दिशा **पीछे** की ग्रोर है: "इन्हें ग्रपने ऊपर भरोसा नहीं है, जनता में भरोसा नहीं है; जो ऊपर हैं उन पर भुनभुनाते हैं, जो नीचे हैं उनसे ये थरथर कांपते हैं;... भय है कि सारी दुनिया को हिला देनेवाला तूफ़ान न ग्रा जाय;... ताक़त कहीं नहीं, हर जगह लुकाचोरी;... न कोई प्रेरणा... ये जर्मन पूंजीवादी एक बूढ़े खूसट ग्रादमी जैसे हैं जिसे ग्रपनी बुढ़ौती

के हितों के लिए एक नववयस्क और शक्तिमान जनता के प्रथम वयसुलभ प्रेरणाओं का मार्ग निर्देश करना पड़े ..." ('नोये राइनिशे त्साइटुङ', १८४८; देखिये 'साहित्यिक विरासत', खंड ३, पृष्ठ २१२)[19] लगभग बीस साल बाद एंगेल्स को पत्र लिखते हुए ('पत्र-व्यवहार', खंड ३, पृष्ठ २२४) मार्क्स ने कहा था कि १८४८ की क्रान्ति की असफलता का कारण यह था कि पूंजीपतियों ने स्वतंत्रता के लिए लड़ने की कल्पना मात्र से गुलामी के साथ शान्ति को श्रेयस्कर समझा। जब १८४८-१८४९ का क्रान्तिकारी युग समाप्त हो गया, तो मार्क्स ने क्रान्ति के साथ किसी भी तरह खिलवाड़ करने का भारी विरोध किया (शापर और विलिख़ और उनके विरुद्ध संघर्ष) और इस पर ज़ोर दिया कि नयी अवस्था में जब तथाकथित "शान्तिपूर्ण" ढंग से नयी क्रान्तियों की तैयारी हो रही है, हममें कार्य-क्षमता होनी चाहिए। १८५६ की घोर प्रतिक्रिया के दिनों में मार्क्स ने जर्मनी की स्थिति का जैसा विवरण दिया था उससे स्पष्ट है कि वह किस भावना से काम किया जाना पसन्द करते थे: "किसी दूसरे कृषक-युद्ध द्वारा सर्वहारा क्रान्ति के समर्थन किये जाने की संभावना पर ही जर्मनी में सब कुछ निर्भर है।" ('पत्र-व्यवहार', खंड २, पृष्ठ १०८)[20] जर्मनी में जब पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति चालू थी, तो समाजवादी सर्वहारा वर्ग की कार्यनीति में मार्क्स ने सारा ध्यान किसानों की जनवादी शक्ति को बढ़ाने में लगाया। उनका कहना था कि और बातों के साथ लासाल का रवैया "वस्तुगत रूप से ... प्रशियन हित में सम्पूर्ण मज़दूर आन्दोलन के प्रति विश्वासघात था" (खंड ३, पृष्ठ २१०) क्योंकि वह जंकरों (प्रशा के ज़मींदारों—सं०) और प्रशियन राष्ट्रवाद की कार्यवाहियों पर आंखें मूंदे रहा। १८६५ को अपनी एक संयुक्त घोषणा के बारे में—जो प्रेस के लिए लिखी गयी थी—मार्क्स से विचार-विनिमय करते हुए एंगेल्स ने लिखा था: "ऐसे देश में जहां कृषि की बहुत बड़ी प्रधानता हो, औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के नाम पर पूंजीपतियों पर ही अकेले हमला करना, और सामन्तशाही अभिजात-वर्ग के अंकुश के नीचे ग्रामीण मज़दूर के दादापंथी शोषण के प्रति एक शब्द भी न कहना, निरी कायरता है।" (खंड ३, पृष्ठ २१७)[21] १८६४ से १८७० की

अवधि में, जब जर्मनी में पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति का युग, वह **युग** जिस में प्रशा और आस्ट्रिया के शोषक वर्गों ने किसी न किसी तरह **ऊपर से** क्रान्ति को सम्पन्न करने के लिए युद्ध किया था, समाप्त हो रहा था, मार्क्स ने लासाल की ही भर्त्सना न की थी कि वह बिस्मार्क से मेल-मिलाप कर रहा था, वरन् लीब्कनेख़्त को भी ठीक रास्ता दिखाया क्योंकि वह "आस्ट्रिया-भक्ति" में निमग्न हो रहे थे और पार्टीक्युलारिज़्म[22] का पक्ष समर्थन करने लगे थे। मार्क्स ने उस क्रान्तिकारी कार्यनीति पर भरपूर ज़ोर दिया जो बिस्मार्क और "आस्ट्रिया-भक्ति" दोनों से ही समान निर्ममता से युद्ध करे, उस कार्यनीति जो न केवल "विजेता", प्रशियन जंकर[23] के अनुकूल न हो वरन् **उसी आधार पर,** जो प्रशा की सैनिक विजय से बना था, तुरन्त ही उस जंकर के विरुद्ध क्रान्तिकारी संघर्ष भी छेड़ दे। ('पत्र-व्यवहार', खंड ३, पृष्ठ १३४, १३६, १४७, १७९, २०४, २१०, २१५, ४१८, ४३७, ४४०-४४१)[24] इण्टरनेशनल की ६ सितम्बर १८७० की अपनी प्रसिद्ध अपील में मार्क्स ने फ़्रांसीसी सर्वहारा वर्ग को असमय विद्रोह करने की ओर से सावधान किया। लेकिन १८७१ में जब विद्रोह वास्तव में हो गया तो मार्क्स ने बड़े ही जोश से जनता की क्रान्तिकारी पहलक़दमी का स्वागत किया कि वह "आसमान को हिला देने" के लिए चली थी (कुगेलमन को मार्क्स का पत्र)। द्वंद्वात्मक पदार्थवाद के मार्क्सीय दृष्टिकोण से, सर्वहारा संघर्ष की सामान्य प्रगति **और उसके परिणाम** के दृष्टिकोण से ऐसी स्थिति में और ऐसी ही अन्य स्थितियों में, अब तक के मोर्चे से पीछे हट जाने और बिना युद्ध के आत्मसमर्पण कर देने की अपेक्षा क्रान्तिकारी आक्रमण की विफलता कम हानिकारक थी क्योंकि उस तरह के आत्मसमर्पण से सर्वहारा वर्ग का मनोबल क्षीण हो जाता और संघर्ष के लिए उसकी तत्परता नष्ट हो जाती। राजनीतिक शिथिलता के दिनों में और उन दिनों में जब पूंजीवाद का क़ानूनीपन फैला हुआ हो, तब लड़ाई के क़ानूनी साधनों के महत्व को पूरी तरह स्वीकार करते हुए, मार्क्स ने १८७७ और १८७८ में, जब जर्मनी में समाजवादियों के विरुद्ध असाधारण क़ानून[25] बना था, मोस्ट की "क्रान्तिकारी शब्दाडम्बर" की तीव्र निन्दा की थी। साथ ही उन्होंने उतनी ही तेज़ी से अवसरवाद

पर भी हमला किया जो सरकारी सामाजिक-जनवादी पार्टी में कुछ समय के लिए अपने क़दम जमा चुका था। उस पार्टी ने समाजवाद-विरोधी क़ानून के जवाब में निश्चय, दृढ़ता और क्रान्तिकारी भावना तथा ग़ैर-क़ानूनी लड़ाई का झण्डा तुरन्त बुलन्द करने में तत्परता का परिचय नहीं दिया। ('पत्र-व्यवहार', खंड ४, पृष्ठ ३९७, ४०४, ४१८, ४२२, ४२४;[26] ज़ोर्गे को मार्क्स के पत्र भी देखिये।)

लेखन-काल: जुलाई-नवम्बर १९१४;
१९१५ में ग्रानात विश्वकोष, सातवें संस्करण,
खंड २८ में पहली बार प्रकाशित।
हस्ताक्षर: व्ला० इल्यीन

व्ला० इ० लेनिन,
संग्रहीत रचनाएं,
चौथा रूसी संस्करण,
खंड २१, पृष्ठ २७-६२

फ़्रेडरिक एंगेल्स

दीप बुझा जो सचमुच कैसा कान्तिमान् था,
हृदय रुका जो सचमुच कितना था विशाल औ' प्राणवान् था![27]

५ अगस्त, १८९५ को लंदन में फ़्रेडरिक एंगेल्स का देहांत हुआ। अपने मित्र कार्ल मार्क्स (जिनका देहांत १८८३ में हुआ था) के बाद एंगेल्स ही समूचे सभ्य संसार के आधुनिक सर्वहारा के सबसे विख्यात पंडित और आचार्य थे। जबसे भाग्य ने कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स को एक सूत्र में बांध दिया उस समय से इन दोनों मित्रों का जीवन-कार्य एक ही साझे ध्येय को अर्पित हो गया। अतः फ़्रेडरिक एंगेल्स ने सर्वहारा के लिए क्या किया यह समझने के लिए समकालीन मज़दूर आंदोलन के विकास के विषय में मार्क्स के कार्य और शिक्षा के महत्त्व की स्पष्ट कल्पना आवश्यक है। सबसे पहले मार्क्स और एंगेल्स ने ही दिखा दिया कि मज़दूर वर्ग और मज़दूर वर्ग की मांगें उस वर्तमान अर्थ-व्यवस्था का एक आवश्यक परिणाम हैं जो पूंजीवादी वर्ग के साथ अनिवार्य रूप से सर्वहारा को जन्म देती है और उसका संगठन करती है। उन्होंने दिखा दिया कि आज मनुष्य-जाति को उसे उत्पीड़ित करनेवाली बुराइयों के चंगुल से मुक्त करने का कार्य उदारचित्त व्यक्तियों के सदाशयतापूर्ण प्रयत्नों से नहीं, बल्कि संगठित सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष से संपन्न होगा। अपनी वैज्ञानिक रचनाओं में सबसे पहले मार्क्स और एंगेल्स ने ही स्पष्ट किया कि समाजवाद कोई स्वप्नदर्शियों का आविष्कार नहीं है, बल्कि है आधुनिक समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास का अंतिम लक्ष्य और अनिवार्य परिणाम। आज तक का समूचा लिखित इतिहास

वर्ग-संघर्ष का, विशिष्ट सामाजिक वर्गों द्वारा दूसरे वर्गों पर शासन और विजय का, इतिहास रहा है। और यह तब तक जारी रहेगा जब तक वर्ग-संघर्ष और वर्ग-शासन की बुनियादों – निजी संपत्ति और अव्यवस्थित सामाजिक उत्पादन – का लोप नहीं होगा। सर्वहारा के हितों की दृष्टि से इन बुनियादों का नाश होना आवश्यक है और इसलिए संगठित मज़दूरों के सचेतन वर्ग-संघर्ष का रुख़ इनके विरुद्ध मोड़ देना चाहिए। और हर वर्ग-संघर्ष एक राजनीतिक संघर्ष है।

मार्क्स और एंगेल्स के ये दृष्टिकोण अब अपनी मुक्ति के लिए लड़नेवाले सभी सर्वहारा ने अंगीकार कर लिये हैं। पर जब १९ वीं शताब्दी के ५ वें दशक में उक्त मित्र-द्वय ने अपने समय के समाजवादी साहित्य-सृजन और सामाजिक आंदोलनों में भाग लिया उस समय ये मत पूर्णतया नवीन थे। उस समय बहुत-से ऐसे लोग थे जो राजनीतिक स्वतंत्रता के संघर्ष में, राजा-महाराजाओं, पुलिस और पादरियों की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध संघर्ष में रत होते हुए भी पूंजीवादी वर्ग के हितों और सर्वहारा के हितों के बीच का विरोध-भाव न देख पाये। इनमें प्रतिभाशाली लोग थे और प्रतिभाहीन भी, ईमानदार लोग थे और बेईमान भी। ये लोग यह विचार स्वीकार तक न करते थे कि मज़दूर एक स्वतंत्र सामाजिक शक्ति के रूप में काम करें। दूसरी ओर, कितने ही ऐसे स्वप्नदर्शी थे, और इनमें से कुछ प्रतिभाशाली भी थे, जो मानते थे कि बस, शासकों और शासक वर्गों को समकालीन समाज-व्यवस्था के अन्याय के बारे में विश्वास दिलाने भर की ज़रूरत है, फिर धरती पर शांति और आम ख़ुशहाली की स्थापना करना बायें हाथ का खेल हो जायेगा। वे बिना संघर्ष के समाजवाद के स्वप्न देखा करते थे। अंततः, उस समय के लगभग सभी समाजवादी और आम तौर पर मज़दूर वर्ग के मित्र सर्वहारा को एक **फोड़ा** भर मानते थे और भयग्रस्त होकर देखते थे कि उद्योग की वृद्धि के साथ यह फोड़ा भी कैसे बड़ा होता जा रहा था। अतः, वे सब इस बात पर तुले हुए थे कि उद्योग का और सर्वहारा का विकास कैसे रोका जाये, "इतिहास का पहिया" कैसे रोका जाये। सर्वहारा के विकास के आम भय में अंशभागी होना तो दूर ही रहा, उल्टे मार्क्स और एंगेल्स सर्वहारा की अप्रतिहत वृद्धि पर अपनी सारी आस

लगाये हुए थे। सर्वहारा की संख्या जितनी अधिक होगी, क्रांतिकारी वर्ग के रूप में उसकी शक्ति उतनी ही अधिक होगी और समाजवाद समीपतर और संभवतर होगा। मार्क्स और एंगेल्स द्वारा की गयी मज़दूर वर्ग की सेवाओं का वर्णन संक्षेप में इन शब्दों में अभिव्यक्त किया जा सकता है: उन्होंने मज़दूर वर्ग को स्वयं अपने को पहचान लेने और अपने प्रति सचेत होने की शिक्षा दी, और स्वप्नों के स्थान में विज्ञान की स्थापना की।

इसी लिए हर मज़दूर को एंगेल्स के नाम और जीवन से परिचित होना आवश्यक है। यही कारण है कि इस लेख-संग्रह में हम वर्तमान सर्वहारा के दो महान आचार्यों में से एक, फ़ेडरिक एंगेल्स के जीवन और कार्य की रूपरेखा प्रस्तुत करना आवश्यक मानते हैं। हमारे अन्य सभी प्रकाशनों की तरह इस लेख-संग्रह का उद्देश्य भी रूसी मज़दूरों के बीच वर्ग-चेतना को जागृत करना है।

एंगेल्स का जन्म १८२० में प्रशा राज्य के राइन प्रदेश में स्थित बार्मेन में हुआ था। उनके पिता एक कारख़ानेदार थे। १८३८ में एंगेल्स को जिम्नेज़ियम की शिक्षा पूरी किये बिना ही पारिवारिक परिस्थितियों के कारण ब्रेमेन के एक व्यापारिक प्रतिष्ठान में क्लर्क की नौकरी पकड़नी पड़ी। पर एंगेल्स की वैज्ञानिक और राजनीतिक शिक्षा जारी ही रही, उसमें व्यापारिक मामले कोई बाधा न डाल सके। जब वह जिम्नेज़ियम में पढ़ रहे थे उसी समय से निरंकुशशासन और नौकरशाहों के अत्याचारों से घृणा करने लगे थे। दर्शन का अध्ययन उन्हें और आगे ले गया। उन दिनों जर्मन दर्शन पर हेगेल की शिक्षा का प्रभाव था और एंगेल्स उनके अनुयायी बन गये। यद्यपि स्वयं हेगेल निरंकुश प्रशियन राज्य के प्रशंसक थे और बर्लिन विश्वविद्यालय के एक प्रोफ़ेसर के नाते उसकी सेवा कर रहे थे, फिर भी उनके **सिद्धांत** क्रांतिकारी थे। इस बर्लिनवासी दार्शनिक के जो शिष्य वर्तमान परिस्थिति के साथ राज़ीनामा करने से इनकार करते थे उन्हें मनुष्य की तर्कशक्ति और उसके अधिकारों में हेगेल का विश्वास और हेगेलवादी दर्शन का यह आधारभूत सिद्धांत कि विश्व परिवर्तन और विकास की एक सतत प्रक्रिया के अधीन है, इस विचार की ओर अग्रसर कर रहा था कि

इस परिस्थिति के विरुद्ध संघर्ष, वर्तमान अन्याय और चालू बुराई के विरुद्ध संघर्ष भी अनंत विकास के सर्वव्यापी नियम में दृढ़मूल है। यदि सब बातें विकसित होती हैं, यदि संस्थाएं दूसरी संस्थाओं को स्थान देती हैं, तो क्या कारण है कि प्रशियन राजा या रूसी ज़ार की निरंकुशता, विशाल बहुमत को हानि पहुंचाकर नगण्य अल्पमत की समृद्धि या जनता पर पूंजीवादी वर्ग का प्रभुत्व सदैव बना रहे? हेगेल के दर्शन ने मन और विचारों के विकास की बात की; वह **आदर्शवादी** दर्शन था। मन के विकास से उसने प्रकृति, मनुष्य और मानवीय, सामाजिक संबंधों के विकास का तर्क-निर्णय निकाला। हेगेल का विकास की अनंत प्रक्रिया* विषयक विचार बनाये रखते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने पूर्वचिंतित आदर्शवादी दृष्टिकोण अस्वीकार किया; जीवन के तथ्यों की ओर मुड़ते हुए उन्होंने अवलोकन किया कि मन का विकास प्रकृति के विकास का स्पष्टीकरण नहीं देता बल्कि इसके विपरीत मन का स्पष्टीकरण प्रकृति से, पदार्थ से प्राप्त होना चाहिए... हेगेल और अन्य हेगेलवादियों के विपरीत मार्क्स और एंगेल्स पदार्थवादी थे। संसार और मनुष्य-जाति की ओर पदार्थवादी दृष्टिकोण से देखते हुए उन्होंने अनुभव किया कि जिस प्रकार प्रकृति के सभी व्यापारों के मूल में भौतिक कारण रहते हैं उसी प्रकार मनुष्य समाज का विकास भी भौतिक, उत्पादक शक्तियों के विकास द्वारा निर्धारित होता है। मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ज़रूरी वस्तुओं के उत्पादन में मनुष्य मनुष्य के बीच जो परस्पर संबंध स्थापित होते हैं वे उत्पादक शक्तियों के विकास पर ही निर्भर करते हैं। और इन संबंधों में ही सामाजिक जीवन के सभी व्यापारों, मानवीय आकांक्षाओं, विचारों और नियमों का स्पष्टीकरण निहित होता है। उत्पादक शक्तियों का विकास निजी संपत्ति पर आधारित सामाजिक संबंधों को जन्म देता है, पर अब हम जानते हैं कि उत्पादक शक्तियों का यह विकास ही

---

*मार्क्स और एंगेल्स ने समय समय पर स्पष्ट किया है कि अपने बौद्धिक विकास में वे महान् जर्मन दार्शनिकों और विशेषकर हेगेल के ऋणी हैं। "जर्मन दर्शन के बिना," एंगेल्स कहते हैं, "वैज्ञानिक समाजवाद का जन्म ही न होता।"[28]

बहुमत को उसकी संपत्ति से वंचित कर देता है और यह संपत्ति नगण्य अल्पमत के हाथों में केंद्रित कर देता है। वह संपत्ति को, अर्थात् वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के आधार को नष्ट कर देता है, वह स्वयं ही उसी लक्ष्य की ओर बढ़ता है जिसे समाजवादी अपने सामने रखे हुए हैं। समाजवादियों को बस यह समझ लेना है कि इन सामाजिक शक्तियों में से कौनसी शक्ति वर्तमान समाज में अपनी स्थिति के कारण समाजवाद को लाने में रुचि रखती है, और इस शक्ति को उसके हितों और ऐतिहासिक मिशन की चेतना प्रदान करनी है। यह शक्ति है सर्वहारा। एंगेल्स को यह इंगलैंड में, ब्रिटिश उद्योग के केंद्र मैंचेस्टर में ज्ञात हुआ जहां वह एक व्यापारिक प्रतिष्ठान की सेवा में प्रवेश करके १८४२ में बस गये थे। उनके पिता इस प्रतिष्ठान के एक हिस्सेदार थे। यहां एंगेल्स केवल फ़ैक्टरी के दफ़्तर में नहीं बैठे रहे, उन्होंने उन गंदी गलियों के चक्कर लगाये जहां मज़दूर दरबों की सी जगहों में रहते थे। उन्होंने अपनी आंखों उनकी दरिद्रता और दयनीय दशा देखी। पर वह केवल वैयक्तिक निरीक्षण करके ही नहीं रहे। ब्रिटिश मज़दूर वर्ग की स्थिति के संबंध में जो भी सामग्री देखने में आयी, उन्होंने सारी की सारी पढ़ डाली और जो भी सरकारी काग़ज़ात हाथ लगे, उन्होंने उन सबका ध्यान से अध्ययन किया। इन अध्ययनों और निरीक्षणों का फल १८४५ में प्रकाशित 'इंगलैंड के मज़दूर वर्ग की स्थिति' शीर्षक पुस्तक के रूप में प्रकट हुआ। 'इंगलैंड के मज़दूर वर्ग की स्थिति' के लेखक के नाते एंगेल्स ने जो मुख्य सेवा की उसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। एंगेल्स के पहले भी कितने ही लोगों ने सर्वहारा के कष्टों का वर्णन और उसकी सहायता की आवश्यकता के प्रति संकेत किया था। पर एंगेल्स ही वह **पहले** व्यक्ति थे जिन्होंने कहा कि सर्वहारा **न केवल** कष्टग्रस्त वर्ग है, पर यह कि वस्तुतः सर्वहारा की लज्जाजनक आर्थिक स्थिति उसे अप्रतिहत रूप से आगे बढ़ा रही है और उसकी अंतिम मुक्ति के लिए लड़ने को विवश कर रही है। और लड़ाकू सर्वहारा **स्वयं अपनी सहायता कर लेगा।** मज़दूर वर्ग का राजनीतिक आंदोलन अनिवार्य रूप से मज़दूरों को अनुभव करायेगा कि उनकी एकमात्र मुक्ति समाजवाद में निहित है। दूसरी ओर, समाजवाद

तभी एक शक्ति बनेगा जब वह मज़दूर **वर्ग** के **राजनीतिक** संघर्ष का उद्देश्य बन जायेगा। ये हैं इंगलैंड के मज़दूर वर्ग की स्थिति से संबंधित एंगेल्स की पुस्तक के मुख्य विचार। ये विचार अब सभी विचारशील और संघर्षरत सर्वहारा ने अंगीकार कर लिये हैं, पर उस समय वे पूर्णतया नवीन थे। इन विचारों का प्रकाशन एक ऐसी पुस्तक में हुआ जो हृदयग्राही शैली में लिखी हुई है और ब्रिटिश सर्वहारा की दयनीय दशा के अत्यंत प्रामाणिक और भयानक चित्रों से भरपूर है। यह पुस्तक पूंजीवाद और पूंजीवादी वर्ग के विरुद्ध एक घोर अभियोग-पत्र सिद्ध हुई। उसने बहुत ही गंभीर प्रभाव उत्पन्न किया। आधुनिक सर्वहारा की स्थिति के सर्वोत्तम चित्र प्रस्तुत करनेवाली पुस्तक के रूप में एंगेल्स की इस रचना को सर्वत्र उद्धृत किया जाने लगा। और वस्तुतः न १८४५ के पहले और न उसके बाद ही मज़दूर वर्ग की दयनीय दशा का इतना प्रभावोत्पादक और सत्यदर्शी चित्र और कहीं प्रस्तुत हो पाया है।

इंगलैंड में आ बसने के बाद ही एंगेल्स समाजवादी बने। मैंचेस्टर में उन्होंने उस समय के ब्रिटिश मज़दूर आंदोलन में सक्रिय भाग लेनेवाले लोगों से संपर्क स्थापित किये और अंग्रेज़ी समाजवादी प्रकाशनों के लिए लेख लिखना आरंभ किया। १८४४ में जर्मनी लौटते समय वह पेरिस में मार्क्स से परिचित हुए। मार्क्स के साथ उनका पत्र-व्यवहार इससे पहले ही जारी हुआ था। पेरिस में फ़्रांसीसी समाजवादियों और फ़्रांसीसी जीवन के प्रभाव से मार्क्स भी समाजवादी बन गये थे। यहां इस मित्र-द्वय ने संयुक्त रूप से एक पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक है 'पवित्र परिवार या आलोचनात्मक आलोचना की आलोचना'। यह पुस्तक 'इंगलैंड के मज़दूर वर्ग की स्थिति' के एक वर्ष पहले प्रकाशित हुई और इसका अधिकांश मार्क्स ने लिखा। इसमें क्रांतिकारी-पदार्थवादी समाजवाद के आधार समाविष्ट हैं जिनके मुख्य विचारों की व्याख्या हम ऊपर कर चुके हैं। 'पवित्र परिवार' दार्शनिक बावेर बंधुओं और उनके अनुयायियों का चुटकीला उपनाम है। इन सज्जनों ने ऐसी आलोचना का उपदेश दिया जो समूची वास्तविकता के परे हो, जो पार्टियों और राजनीति के परे हो, जो सारी व्यावहारिक गतिविधि से इनकार करती हो और जो केवल "आलोचनात्मक ढंग से" आसपास के संसार का और उसमें घट रही

घटनाओं का चिंतन करती हो। इन सज्जनों ने, अर्थात् बावेर बंधुओं ने सर्वहारा को घमंड से एक आलोचना-शून्य समूह माना। मार्क्स और एंगेल्स ने बड़े जोश के साथ इस बेहूदी और हानिकारक प्रवृत्ति का विरोध किया। एक वास्तविक मानवीय व्यक्तित्व – अर्थात् शासक वर्गों और राज्य द्वारा पददलित मज़दूर – के नाम पर उन्होंने चिंतन की नहीं, बल्कि अधिक अच्छी समाज-व्यवस्था के लिए संघर्ष की मांग की। अवश्य ही उन्होंने सर्वहारा को यह संघर्ष खड़ा करने योग्य और उसमें दिलचस्पी रखनेवाली शक्ति माना। 'पवित्र परिवार' के प्रकाशित होने से पहले ही एंगेल्स ने मार्क्स और रूगे के 'जर्मन-फ़्रांसीसी पत्रिका' में 'राजनीतिक अर्थशास्त्र विषयक आलोचनात्मक निबंध'[29] प्रकाशित किये थे जिनमें उन्होंने समाजवादी दृष्टिकोण से समकालीन अर्थ-व्यवस्था के प्रधान व्यापारों का परीक्षण किया था और यह निष्कर्ष निकाला था कि वे निजी संपत्ति के प्रभुत्व के आवश्यक परिणाम थे। मार्क्स ने राजनीतिक अर्थशास्त्र का अध्ययन करने का निश्चय किया इसमें निःसंशय एंगेल्स के साथ उनके वैचारिक संपर्क का हाथ था। इस विज्ञान के क्षेत्र में मार्क्स की रचनाओं ने वस्तुतः क्रांति कर दी।

१८४५ से १८४७ तक एंगेल्स ब्रसेल्स और पेरिस में रहे और अपनी वैज्ञानिक साधना को ब्रसेल्स और पेरिस के जर्मन मज़दूरों के बीच की व्यावहारिक गतिविधियों का साथ दिया। यहां मार्क्स और एंगेल्स ने गुप्त जर्मन 'कम्युनिस्ट लीग' के साथ संपर्क स्थापित किया और लीग ने उन्हें उनके द्वारा रचित समाजवाद के मुख्य सिद्धांतों की व्याख्या करने का कार्य सौंप दिया। इस प्रकार मार्क्स और एंगेल्स विरचित सुप्रसिद्ध 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' प्रकट हुआ। यह १८४८ में प्रकाशित हुआ। यह छोटी-सी पुस्तिका अनेकानेक ग्रंथों का मूल्य रखती है: आज भी उसकी आत्मा समूचे सभ्य संसार के संगठित और संघर्षरत सर्वहारा को स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करती है।

१८४८ की क्रान्ति ने, जो पहले फ़्रांस में उत्पन्न हुई और फिर पश्चिमी यूरोप के अन्य देशों में फैल गयी, मार्क्स और एंगेल्स को फिर से उनकी मातृभूमि के दर्शन कराये। यहां, राइनी प्रशा में उन्होंने कोलोन

से प्रकाशित होनेवाले जनवादी 'नया राइनी समाचारपत्र' ('नोये राइनिशे त्साइटुङ') की बागडोर अपने हाथों में ली। ये दोनों मित्र राइनी प्रशा की सारी क्रान्तिकारी-जनवादी आकांक्षाओं के हृदय और आत्मा थे। उन्होंने आख़िरी दम तक प्रतिक्रियावादी शक्तियों के विरुद्ध जनता के हितों और स्वतंत्रता की रक्षा की। जैसा कि हम जानते हैं, जीत प्रतिक्रियावादी शक्तियों की हुई। 'नोये राइनिशे त्साइटुङ' का गला घोंट दिया गया। मार्क्स को, जो पिछले निर्वासन-काल में अपनी प्रशियाई नागरिकता खो चुके थे, फिर निर्वासित कर दिया गया; पर एंगेल्स ने सशस्त्र जन-विप्लव में भाग लिया, स्वतंत्रता के लिए तीन लड़ाइयों में जौहर दिखाया और विप्लवकारियों की पराजय के बाद स्विट्ज़रलैंड से होकर लंदन भाग गये।

मार्क्स भी वहीं बस गये। एंगेल्स फिरेक बार मैंचेस्टर के उसी व्यापारिक प्रतिष्ठान में क्लर्क बन गये जहां वे उन्नीसवीं शताब्दी के पांचवें दशक में काम करते थे। बाद में वह उक्त प्रतिष्ठान के हिस्सेदार बने। १८७० तक वह मैंचेस्टर में रहे जब कि मार्क्स लंदन में रहते थे। फिर भी इससे उनके अत्यंत जीवंत बौद्धिक संपर्क के जारी रहने में कोई बाधा न आयी: लगभग हर रोज़ उनकी चिट्ठी-पत्री चलती थी। इस पत्र-व्यवहार द्वारा मित्र-द्वय ने दृष्टिकोणों एवं ज्ञान का आदान-प्रदान और वैज्ञानिक समाजवाद की रचना में सहयोग जारी रखा। १८७० में एंगेल्स लंदन चले गये और वहां उनका भारी परिश्रम से भरपूर संयुक्त बौद्धिक जीवन १८८३ तक अर्थात् मार्क्स के देहांत तक जारी रहा। इस परिश्रम का फल मार्क्स की ओर से 'पूंजी' रहा, जो राजनीतिक अर्थशास्त्र पर हमारे युग की सबसे महान् रचना है, और एंगेल्स की ओर से कितनी ही छोटी-मोटी रचनाएं। मार्क्स ने पूंजीवादी अर्थतंत्र के जटिल व्यापारों के विश्लेषण पर काम किया। एंगेल्स ने सीधी-सादी और अक्सर खंडन-मंडनात्मक भाषा में लिखी हुई अपनी रचनाओं में साधारणतः वैज्ञानिक समस्याओं और अतीत तथा वर्तमान की विविध घटनाओं का विवेचन इतिहास की पदार्थवादी धारणा और मार्क्स के आर्थिक सिद्धांत के प्रकाश में किया। एंगेल्स की इन रचनाओं में से हम निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख करेंगे: ड्यूहरिंग के विरुद्ध

की खंडन-मंडनात्मक रचना (जिसमें दर्शन, प्राकृतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र की अत्यंत महत्वपूर्ण समस्याओं का विश्लेषण किया गया है)*, 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' (रूसी में अनुवादित, सेंट-पीटर्सबर्ग में प्रकाशित, तृतीय संस्करण, १८९५), 'लुडविग फ़ायरबाख़' (टिप्पणियों सहित रूसी अनुवाद प्लेखानोव द्वारा, जेनेवा, १८९२), रूसी सरकार की विदेश नीति के संबंध में एक लेख (जेनेवा के 'सोत्सिअल-देमोक्रात' के पहले और दूसरे अंकों में रूसी में अनुवादित)[32], मकानों के सवाल पर कुछ उत्कृष्ट लेख[33], और अंत में, रूस के आर्थिक विकास के संबंध में दो छोटे पर अतिमूल्यवान् लेख ('रूस के संबंध में फ़्रेडरिक एंगेल्स के विचार'[34], वेरा ज़ासुलिच द्वारा रूसी में अनुवादित, जेनेवा, १८९४)। पूंजी से संबंधित विशाल काम पूरा होने से पहले ही मार्क्स का देहांत हुआ। फिर भी कच्चे रूप में यह काम तैयार था। अपने मित्र की मृत्यु के बाद एंगेल्स ने 'पूंजी' के द्वितीय और तृतीय खंडों की तैयारी और प्रकाशन का भारी काम अपने कंधों पर लिया। उन्होंने द्वितीय खंड १८८५ में और तृतीय खंड १८९४ में प्रकाशित किया (उनकी मृत्यु के कारण चतुर्थ खंड की तैयारी में बाधा पड़ी)[35]। उक्त दो खंडों के प्रकाशन की तैयारी का काम बहुत ही परिश्रमपूर्ण था। आस्ट्रियाई सामाजिक-जनवादी एडलर ने ठीक ही कहा कि 'पूंजी' के द्वितीय और तृतीय खंडों के प्रकाशन द्वारा एंगेल्स ने अपने प्रतिभाशाली मित्र का भव्य स्मारक खड़ा किया, एक ऐसा स्मारक जिसपर न चाहते हुए भी उन्होंने अपना नाम अमिट रूप में अंकित कर दिया। और वस्तुतः 'पूंजी' के इन दो खंडों के रचयिता दो व्यक्ति हैं : मार्क्स और एंगेल्स। प्राचीन इतिहास में मैत्री के कितने ही हृदयस्पर्शी उदाहरण मिलते हैं। यूरोपीय सर्वहारा कह

---

* यह बहुत ही अनोखी और शिक्षादायी पुस्तक है।[30] दुर्भाग्य से उसका एक छोटा-सा हिस्सा ही रूसी में अनुवादित किया गया है। इस हिस्से में समाजवाद के विकास की ऐतिहासिक रूपरेखा दी गयी है ('वैज्ञानिक समाजवाद का विकास', द्वितीय संस्करण, जेनेवा, १८९२)[31]।

सकता है कि उसके विज्ञान की रचना दो ऐसे पंडितों और योद्धाओं ने की जिनके परस्पर संबंधों ने प्राचीन लोगों की मानवीय मैत्री की अत्यंत हृदयस्पर्शी कथाओं को पीछे छोड़ दिया। एंगेल्स सदा ही–और आम तौर पर न्यायसंगत रूप से–अपने को मार्क्स के बाद रखते थे। "मार्क्स के जीवन काल में," उन्होंने अपने एक पुराने मित्र को लिखा था, "मैंने पूरक भूमिका अदा की।"[36] जीवित मार्क्स के प्रति उनका प्रेम और मृत मार्क्स की स्मृति के प्रति उनका आदर असीम था। इस दृढ़ योद्धा और कठोर विचारक का हृदय गहरे प्रेम से परिपूर्ण था।

१८४८-४९ के आंदोलन के बाद निर्वासन-काल में मार्क्स और एंगेल्स केवल वैज्ञानिक कार्य में ही नहीं व्यस्त रहे। १८६४ में मार्क्स ने 'अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर सभा' की स्थापना की और पूरे दशक भर इस संस्था का नेतृत्व किया। एंगेल्स ने भी इस संस्था के कार्य में सक्रिय भाग लिया। 'अंतर्राष्ट्रीय सभा' ने मार्क्स के विचारानुसार सभी देशों के सर्वहारा को एक किया और मज़दूर वर्ग के आंदोलन के विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। पर १९ वीं शताब्दी के आठवें दशक में उक्त सभा का अंत होने के बाद भी मार्क्स और एंगेल्स की एकीकरण विषयक भूमिका नहीं समाप्त हुई। इसके विपरीत कहा जा सकता है कि मज़दूर आंदोलन के आध्यात्मिक नेताओं के रूप में उनका महत्त्व सतत बढ़ता रहा, क्योंकि स्वयं यह आंदोलन भी अप्रतिहत रूप से प्रगति करता रहा। मार्क्स की मृत्यु के बाद अकेले एंगेल्स यूरोपीय समाजवादियों के परामर्शदाता और नेता बने रहे। उनका परामर्श और मार्गदर्शन जर्मन समाजवादी और स्पेन, रूमानिया, रूस आदि जैसे पिछड़े देशों के प्रतिनिधि भी समान रूप से चाहते थे। जर्मन समाजवादियों की शक्ति सरकारी यंत्रणाओं के बावजूद शीघ्रता से और सतत बढ़ रही थी और उक्त पिछड़े देशों के प्रतिनिधि अपने पहले क़दमों के बारे में विचार करने और क़दम उठाने को विवश थे। वे सब वृद्ध एंगेल्स के ज्ञान और अनुभव के समृद्ध भंडार से लाभ उठाते थे।

मार्क्स और एंगेल्स दोनों रूसी भाषा जानते थे और रूसी पुस्तकें पढ़ा करते थे। रूस के बारे में वे जीवंत रुचि लेते थे, रूसी क्रांतिकारी आंदोलन

के प्रति सहानुभूति रखते थे और रूसी क्रांतिकारियों से संपर्क बनाये हुए थे। समाजवादी बनने से पहले वे दोनों **जनवादी** थे और राजनीतिक निरंकुशता के प्रति **घृणा** की जनवादी भावना उनमें बहुत ही बलवती थी। इस प्रत्यक्ष राजनीतिक भावना, उसके साथ साथ राजनीतिक निरंकुशता और आर्थिक उत्पीड़न के बीच के संबंधों की गंभीर सैद्धांतिक समझबूझ और इसी तरह जीवन विषयक समृद्ध अनुभव ने मार्क्स और एंगेल्स को यथार्थतः **राजनीतिक** दृष्टिकोण से असाधारण रूप में संवेदनशील बना दिया। इसी कारण बलशाली ज़ारशाही सरकार के विरुद्ध मुट्ठी-भर रूसी क्रांतिकारियों के संघर्ष ने इन जांचे-परखे क्रांतिकारियों के हृदयों में सहानुभूति की प्रतिध्वनि उत्पन्न की। दूसरी ओर, मायावी आर्थिक सुविधाओं की प्राप्ति के लिए रूसी समाजवादियों के सबसे फ़ौरी और सबसे महत्त्वपूर्ण काम की ओर से, यानी राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की ओर से मुंह मोड़ लेने की प्रवृत्ति की ओर उन्होंने संशय की दृष्टि से देखा, और इतना ही नहीं, उन्होंने उसे सामाजिक क्रांति के महान् कार्य के प्रति विश्वासघात माना। "सर्वहारा की मुक्ति स्वयं सर्वहारा का ही काम होना चाहिए" — मार्क्स और एंगेल्स बराबर यही सीख देते रहे।[37] पर अपनी आर्थिक मुक्ति के लिए सर्वहारा को अपने लिए कुछ **राजनीतिक** अधिकार प्राप्त कर लेने चाहिए। इसके अलावा मार्क्स और एंगेल्स ने स्पष्ट रूप से देखा कि रूस की राजनीतिक क्रांति पश्चिमी-यूरोपीय मज़दूर आंदोलन के लिए भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। स्वेच्छाचारी रूस सदा से ही आम तौर पर यूरोपीय प्रतिक्रिया का गढ़ रहा था। एक लंबे समय तक जर्मनी और फ़्रांस के बीच अनबन के बीज बोनेवाले १८७० के युद्ध के परिणामस्वरूप रूस को प्राप्त हुई अत्यधिक अनुकूल अंतर्राष्ट्रीय स्थिति ने अवश्य ही प्रतिक्रियावादी शक्ति के रूप में स्वेच्छाचारी रूस का महत्त्व बढ़ा ही दिया। केवल स्वतंत्र रूस, यानी वह रूस, जिसे न पोलों, फ़िन्नियों, जर्मनों, अर्मनियों या अन्य छोटे-मोटे राष्ट्रों को उत्पीड़ित करने की और न ही फ़्रांस और जर्मनी को बराबर एक दूसरे के विरुद्ध उभाड़ने की आवश्यकता होती, वही वर्तमान यूरोप को युद्ध के भार से मुक्त होने में समर्थ बना देता, यूरोप के सभी प्रतिक्रियावादी तत्त्वों को निर्बल कर

देता और यूरोपीय मज़दूर वर्ग की शक्ति बढ़ा देता। इसलिए एंगेल्स की उत्कट इच्छा थी कि पश्चिम के मज़दूर आंदोलन की प्रगति के हित में भी रूस में राजनीतिक स्वतंत्रता की स्थापना हो। एंगेल्स की मृत्यु से रूसी क्रांतिकारियों का श्रेष्ठ मित्र खो गया।

सर्वहारा के महान् योद्धा और आचार्य फ़्रेडरिक एंगेल्स की स्मृति अमर रहे!

लेखन-काल : शरद, १८९५

'रबोत्निक' लेख-संग्रह, अंक १-२,
१८९६ में पहली बार प्रकाशित

व्ला० इ० लेनिन,
संग्रहीत रचनाएं,
चौथा रूसी संस्करण,
खंड २, पृष्ठ १-१३

टिप्पणियां

[1] व्ला० इ० लेनिन ने **'कार्ल मार्क्स'** शीर्षक अपना लेख ग्रानात विश्वकोष के लिए १९१४ के वसंत में गैलीशिया स्थित पोरोनिनो में लिखना आरंभ किया और उसी वर्ष की नवंबर में स्विट्ज़रलैंड स्थित बर्न में समाप्त किया। १९१८ में यह लेख पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ था। इसकी भूमिका में लेनिन ने लिखा था कि जहां तक उन्हें याद है, यह लेख १९१३ में लिखा गया था।

यह लेख उक्त विश्वकोष में १९१५ में व० इल्यीन के हस्ताक्षर के साथ प्रकाशित हुआ। लेख के साथ परिशिष्ट के रूप में 'मार्क्सवाद की संदर्भ-सूची' जोड़ी गयी थी। सेन्सर से बचने के लिए विश्वकोष के संपादकों ने लेख के दो हिस्से ('समाजवाद' और 'सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष की कार्यनीति') छोड़ दिये थे और बाक़ी लेख में भी काफ़ी हेरफेर किये थे।

१९१८ में 'प्रिबोई' पब्लिशर्स ने यह लेख व्ला० इ० लेनिन की भूमिका के साथ पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया। लेख का स्वरूप वही था जो विश्वकोष में था; पर इस पुस्तिका में 'मार्क्सवाद की संदर्भ-सूची' नहीं दी गयी थी।

पांडुलिपि के अनुसार यह लेख पूर्ण रूप में पहली बार १९२५ में 'मार्क्स-एंगेल्स-मार्क्सवाद' शीर्षक संग्रह में प्रकाशित किया गया। यह संग्रह रूस की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केंद्रीय समिति के लेनिन संस्थान द्वारा तैयार किया गया था। – पृष्ठ ५

[2] **वामपंथी हेगेलवादी अथवा तरुण हेगेलवादी** – १६ वीं शताब्दी के चौथ और पांचवें दशकों में यह जर्मन दर्शन की आदर्शवादी प्रवृत्ति थी। इसने हेगेल के दर्शन से आमूल-परिवर्तनवादी निष्कर्ष निकालने और जर्मनी के पूंजीवादी रूप-परिवर्तन की आवश्यकता प्रमाणित करने का प्रयत्न किया। द० स्ट्रॉस, ब० और ए० बावेर, म० स्टर्नर इत्यादि वामपंथी हेगेलवादियों के प्रतिनिधि थे। कुछ समय तक ल० फ़ायरबाख़ और तरुण का० मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स इन हेगेलवादियों से संबद्ध थे। पर बाद में इन्होंने तरुण हेगेलवादियों के साथ अपने संबंध तोड़ दिये और 'पवित्र परिवार' (१८४४) तथा 'जर्मन विचारधारा' (१८४५-४६) में उनके दर्शन के आदर्शवादी तथा निम्न-पूंजीवादी स्वरूप की आलोचना की। – पृष्ठ ६

[3] प्रस्तुत संस्करण में मार्क्सवाद के और मार्क्सवाद पर लिखे गये साहित्य का सिंहावलोकन नहीं दिया गया है। – पृष्ठ ७

[4] यहां का० मार्क्स के 'मोज़ेल संवाददाता की रिहाई' शीर्षक लेख की ओर संकेत है। – पृष्ठ ७

[5] **प्रूदों** (१८०६-१८६५) – फ़्रांसीसी निम्न-पूंजीवादी समाजवादी और अराजकतावादी; मार्क्सवाद-विरोधी और विज्ञान-विरोधी प्रूदोंवाद के संस्थापक। निम्न-पूंजीवादी दृष्टिकोण से बड़ी पूंजीवादी संपत्ति की आलोचना करते हुए प्रूदों निजी संपत्ति को शाश्वत बनाने का सपना देखते थे। उनका सुझाव था कि "जन" बैंकों तथा "विनिमय" बैंकों की स्थापना की जाये। वह मानते थे कि इनकी सहायता से मज़दूरों को स्वयं अपने उत्पादन-साधन मिल जायेंगे, मज़दूर कारीगर बन जायेंगे और उनके माल की "न्यायसंगत" बिक्री सुनिश्चित होगी। प्रूदों सर्वहारा की ऐतिहासिक भूमिका और महत्व समझ न पाये और उन्होंने वर्ग-संघर्ष, सर्वहारा-क्रांति और सर्वहारा के अधिनायकत्व के प्रति नकारात्मक रुख़ अपनाया। अराजकतावादी होने के कारण उन्होंने राज्य की आवश्यकता अस्वीकार की। पहली इंटरनेशनल पर अपने विचार

लादने के प्रूदों के प्रयत्नों के विरुद्ध मार्क्स और एंगेल्स ने डटकर संघर्ष किया। मार्क्स ने 'दर्शनशास्त्र की निर्धनता' में प्रूदोंवाद की कड़ी आलोचना की। मार्क्स, एंगेल्स और उनके अनुयायियों द्वारा छेड़े गये दृढ़ संघर्ष के फलस्वरूप पहली इंटरनेशनल में मार्क्सवाद को प्रूदोंवाद पर संपूर्ण विजय मिली।

लेनिन ने प्रूदोंवाद को मज़दूर वर्ग का दृष्टिकोण समझ लेने में असमर्थ "कूपमंडूक की संकीर्ण मनोवृत्ति" की संज्ञा दी। पूंजीवादी "सैद्धांतिकों" द्वारा वर्गों की सुसंगति के प्रचार में प्रूदों के विचारों का विस्तृत उपयोग किया जा रहा है।—पृष्ठ ८

'कम्युनिस्ट लीग'—क्रांतिकारी सर्वहारा का सबसे पहला अंतर्राष्ट्रीय संगठन। १८४७ की गर्मियों में लंदन में इसकी स्थापना हुई। इसके संगठक का० मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स थे। इन्होंने उक्त संगठन के निर्देश पर 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' लिखा। लीग के उद्देश्य इस प्रकार थे: पूंजीवादी वर्ग का तख़्ता उलटना, वर्ग-विरोध पर आधारित पुराने पूंजीवादी समाज की समाप्ति और ऐसे नये समाज की स्थापना जिसमें न कोई वर्ग होंगे और न निजी संपत्ति ही। 'कम्युनिस्ट लीग' ने सर्वहारावादी क्रांतिकारियों के स्कूल, सर्वहारा पार्टी के बीज और 'अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर सभा' (पहली इंटरनेशनल) की पूर्ववर्ती संस्था के रूप में महान् ऐतिहासिक भूमिका अदा की। लीग नवंबर १८५२ तक बनी रही। लीग के प्रमुख नेताओं ने आगे चलकर पहली इंटरनेशनल में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। देखिये फ़्रे० एंगेल्स का 'कम्युनिस्ट लीग के इतिहास के संबंध में' शीर्षक लेख।—पृष्ठ ८

'नोये राइनिशे त्साइटुङ' (नया राइनी समाचारपत्र) कोलोन में १ जून, १८४८ से १९ मई, १८४९ तक प्रकाशित होता रहा। का० मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स इस पत्र के प्रबंधक थे। मार्क्स प्रधान संपादक थे। पत्र ने जन समूहों को शिक्षित किया, प्रतिक्रांति के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रेरित किया। समूचे जर्मनी में पत्र का प्रभाव अनुभव किया गया। 'नोये राइनिशे

त्साइटुङ' दृढ़ और पक्का रुख़ अपनाये था, युयुत्सु अंतर्राष्ट्रीयतावाद की उसकी नीति थी और उसमें प्रशा की सरकार और कोलोन के शासक-अधिकारियों के विरुद्ध राजनीतिक लेख प्रकाशित हुआ करते थे। अत: सामंती-राजवादी तथा उदार-पूंजीवादी समाचारपत्र और स्वयं सरकार भी बुरी तरह इसके पीछे पड़ी रही। मई १८४९ में प्रतिक्रांति ने आम चढ़ाई शुरू की और उस समय प्रशा की सरकार ने इस बात से लाभ उठाकर कि मार्क्स को प्रशा का नागरिकत्व नहीं दिया गया है, उन्हें प्रशा से निर्वासित करने का आदेश जारी किया। मार्क्स के निर्वासन और पत्र के अन्य संपादकों के विरुद्ध की गयी दमनात्मक कार्रवाइयों के कारण पत्र का प्रकाशन बंद हो गया। 'नोये राइनिशे त्साइटुङ' का अंतिम अर्थात् ३०१ वां अंक १९ मई, १८४९ को निकला। यह लाल स्याही में छपा हुआ था। मज़दूरों से विदा लेते हुए संपादकों ने लिखा था कि "हमारे अंतिम शब्द सदैव और सर्वत्र यही रहेंगे: मज़दूर वर्ग की मुक्ति!" 'नोये राइनिशे त्साइटुङ' के संबंध में देखिये, एंगेल्स का 'मार्क्स और 'नोये राइनिशे त्साइटुङ'' (१८४८-१८४९) शीर्षक लेख।– पृष्ठ ८

बकूनिनवाद–म० अ० बकूनिन के नाम पर पहचानी जानेवाली एक प्रवृत्ति। बकूनिन अराजकतावाद का एक विचारक था और था मार्क्सवाद तथा वैज्ञानिक समाजवाद का विक्षिप्त शत्रु। उसके अनुयायियों (बकूनिनवादियों) ने मज़दूर आंदोलन के मार्क्सवादी सिद्धांत और कार्यनीति के विरुद्ध घोर संघर्ष किया। बकूनिनवाद के सिद्धांत का निचोड़ था सर्वहारा के अधिनायकत्व सहित हर प्रकार के राज्य की अस्वीकृति और सर्वहारा की विश्व-ऐतिहासिक भूमिका को समझ लेने की दृष्टि से उनका दिवालियापन। बकूनिन ने वर्गों के "समानीकरण" का, नीचे से "स्वतंत्र संस्थाओं" के एकीकरण का विचार प्रतिपादित किया। बकूनिनवादियों की राय थी कि "विख्यात" व्यक्तियों की एक गुप्त क्रांतिकारी संस्था जनता के विद्रोहों का मार्गदर्शन करे और ये विद्रोह फ़ौरन किये जायें। इस प्रकार उनकी मान्यता थी कि रूसी किसान

फ़ौरन विद्रोह करने के लिए तैयार हैं। बकूनिनवादियों की षड्यंत्रों, फ़ौरी विद्रोहों और आतंक की कार्यनीति दुस्साहसिक थी और विप्लवों के संबंध में मार्क्सवादी सीख के विरुद्ध थी। बकूनिनवाद नरोदवाद के वैचारिक स्रोतों में से एक था।

बकूनिन और बकूनिनवादियों के संबंध में देखिये: का० मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स लिखित 'समाजवादी जनवाद और अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर सभा का गठजोड़' (१८७३); फ़्रे० एंगेल्स लिखित 'कार्यरत बकूनिनवादी' (१८७३) और 'परावसी साहित्य' (१८७५) और लेनिन लिखित 'अस्थायी क्रांतिकारी सरकार' (१९०५), इत्यादि।–पृष्ठ १०

अज्ञेयवाद (एग्नोस्टिसिज़्म – यह शब्द यूनानी शब्दों से बना है: ए – नहीं, ग्नोसिस – ज्ञान) – अज्ञेयवादी भौतिक वस्तुओं का अस्तित्व मानते हैं पर उनकी ज्ञेयता अस्वीकार करते हैं।

समीक्षावाद (क्रिटिसिज़्म) – कान्ट ने अपने आदर्शवादी दर्शन को यह नाम दिया था। कारण कि मनुष्य के बोध की समीक्षा को वह अपने दर्शन का प्रधान प्रयोजन मानते थे। इस "समीक्षा" के फलस्वरूप कान्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मनुष्य वस्तुओं की प्रकृति को समझ लेने में असमर्थ है।

निरीक्षणवाद (पोज़िटिविज़्म) – पूंजीवादी दर्शन और समाजशास्त्र की एक बहुप्रचलित प्रवृत्ति। फ़्रांसीसी दार्शनिक और समाजशास्त्री कोन्त (१७९८-१८५७) इसके संस्थापक थे। निरीक्षणवादी आंतरिक नियम-शासित संपर्कों और संबंधों को जानने की संभावना को अस्वीकार करते हैं, वस्तुगत विश्व को जानने और परिवर्तित करने के साधन के रूप में दर्शन की महत्ता को अस्वीकार करते हैं और उसे केवल पृथक् पृथक् विज्ञानों द्वारा प्राप्त किये गये तथ्यों के सारांश और किसी व्यक्ति के अपने निरीक्षणों के परिणामों के वर्णन तक ही सीमित कर देते हैं। निरीक्षणवाद अपने को पदार्थवाद और आदर्शवाद से "ऊंचा" मानता है पर वास्तव में वह है आत्मवादी आदर्शवाद ही का एक प्रकार।– पृष्ठ १३

[10] **बादशाह की सत्ता की पुनःस्थापना** – फ़्रांस के इतिहास में १८१४ से १८३० तक का काल। इस काल में फ़्रांस में पुनःस्थापित बुर्बोन वंश के हाथों में सत्ता थी। १७९२ की पूंजीवादी क्रांति ने इस वंश का तख़्ता उलट दिया। – पृष्ठ २०

[11] "**सीमान्त उपयोग का सिद्धान्त**" – आस्ट्रियाई पूंजीवादी अर्थशास्त्री बोह्म-बावर्क ने मार्क्स के मूल्य-सिद्धांत के विरोध में उक्त सिद्धांत का विस्तार किया। वह माल के मूल्य की व्याख्या जनता के लिए उसके उपयोग के आधार पर करता है, न कि उसके उत्पादन में लगी हुई सामाजिक श्रम की मात्रा के आधार पर। – पृष्ठ ३०

[12] *«Die Neue Zeit»* (नया ज़माना) – जर्मन सामाजिक-जनवाद की सैद्धांतिक पत्रिका। यह १८८३ से १९२३ तक स्टुटगार्ट से प्रकाशित होती रही। १९१७ तक का० काउत्स्की और बाद में ग० कूनोव इसके संपादक रहे। १८८५ और १८९५ के बीच का० मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स के कई लेख इसमें प्रकाशित हुए। एंगेल्स अक्सर पत्रिका के संपादकों को सलाह दिया करते और मार्क्सवाद से भटक जाने के लिए उनकी कड़ी आलोचना करते। यह पत्रिका फ़्र० मेहरिंग, प० लफ़ार्ग और अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर वर्ग आंदोलन के अन्य नेताओं के लेख भी प्रकाशित करती थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के उत्तरार्द्ध में, एंगेल्स की मृत्यु के बाद, पत्रिका ने अवसरवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए संशोधनवादियों के लेख प्रकाशित करना शुरू किया। प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान में (१९१४-१९१८) पत्रिका ने मध्य-पक्षवादी स्थिति अपनायी और वस्तुतः सामाजिक-अंधराष्ट्रवादियों का समर्थन किया। – पृष्ठ ४०

[13] देखिये का० मार्क्स का पत्र फ़्रे० एंगेल्स के नाम, ता० ९ अप्रैल, १८६३। – पृष्ठ ४१

[14] देखिये फ़्रे० एंगेल्स का पत्र का० मार्क्स के नाम, ता० ५ फ़रवरी, १८५१। – पृष्ठ ४२

[15] देखिये फ़्रे० एंगेल्स का पत्र का० मार्क्स के नाम, ता० ७ अक्तूबर, १८५८।—पृष्ठ ४२

[16] **चार्टिज़्म**—अंग्रेज़ मज़दूरों का जन क्रांतिकारी आंदोलन। यह उनकी कठिन आर्थिक परिस्थिति और राजनीतिक अधिकारों के अभाव के कारण आरंभ हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे दशक के उत्तरार्द्ध में आम सभाओं और प्रदर्शनों के रूप में आरंभ होकर यह छठे दशक के पूर्वार्द्ध तक सविराम जारी रहा।

दृढ़ क्रांतिकारी सर्वहारावादी नेतृत्व और एक निश्चित कार्यक्रम का अभाव चार्टिस्ट आंदोलन की असफलता का मुख्य कारण रहा।—पृष्ठ ४२

[17] देखिये फ़्रे० एंगेल्स के पत्र का० मार्क्स के नाम, ता० ८ अप्रैल और ९ अप्रैल, १८६३।—पृष्ठ ४२

[18] देखिये फ़्रे० एंगेल्स का पत्र का० मार्क्स के नाम, ता० ८ अप्रैल तथा का० मार्क्स का पत्र फ़्रे० एंगेल्स के नाम, ता० ९ अप्रैल, १८६३ और का० मार्क्स का पत्र फ़्रे० एंगेल्स के नाम, ता० २ अप्रैल, १८६६।—पृष्ठ ४३

[19] देखिये का० मार्क्स लिखित 'पूंजीवादी वर्ग और प्रतिक्रांति', दूसरा लेख।—पृष्ठ ४४

[20] देखिये का० मार्क्स का पत्र फ़्रे० एंगेल्स के नाम, ता० १६ अप्रैल, १८५६।—पृष्ठ ४४

[21] देखिये फ़्रे० एंगेल्स के पत्र का० मार्क्स के नाम, ता० २७ जनवरी और ५ फ़रवरी, १८६५।—पृष्ठ ४४

[22] **पार्टीक्युलारिज़्म** (विशिष्टतावाद) – किसी राज्य के पृथक् भागों या प्रदेशों की अपनी स्थानीय विशिष्टताएं और स्वायत्तता अधिकार सुरक्षित रखने की इच्छा। – पृष्ठ ४५

[23] **जंकर** – प्रशा का भू-स्वामी अभिजात वर्ग। – पृष्ठ ४५

[24] देखिये फ़्रे० एंगेल्स के पत्र का० मार्क्स के नाम, ता० ११ जून और २४ नवंबर, १८६३ ; ४ सितंबर, १८६४ ; २७ जनवरी, १८६५ और ६ दिसम्बर, १८६७ ; और का० मार्क्स के पत्र फ़्रे० एंगेल्स के नाम, ता० १२ जून, १८६३ ; १० दिसंबर, १८६४ ; ३ फ़रवरी, १८६५ और १७ दिसंबर, १८६७। – पृष्ठ ४५

[25] **समाजवादियों के विरुद्ध असाधारण क़ानून** १८७८ में जर्मनी में बिस्मार्क की सरकार ने जारी किया था। इसका उद्देश्य था मज़दूरों और समाजवादी आंदोलन की कमर तोड़ना। इस क़ानून ने सामाजिक-जनवादी पार्टी के सभी संगठनों, आम मज़दूर संगठनों और मज़दूर समाचारपत्रों को कुचल दिया ; समाजवादी साहित्य ज़ब्त किया गया और सामाजिक-जनवादियों का निष्कासन आरंभ हुआ। पर दमनात्मक कार्रवाइयों से सामाजिक-जनवादी पार्टी किसी प्रकार निरुत्साहित नहीं हुई। उसने गुप्त क्रियाकलापों का सहारा लिया। पार्टी का केंद्रीय मुखपत्र 'सोत्सिअल-देमोक्रात' विदेश में प्रकाशित होने लगा और नियमित रूप से पार्टी कांग्रेसों का आयोजन हुआ (१८८०, १८८३ और १८८७ में); ग़ैरक़ानूनी केन्द्रीय समिति के नेतृत्व में सामाजिक-जनवादी संगठनों और दलों ने जर्मनी में शीघ्रतापूर्वक अपने क्रियाकलाप भूमिगत रूप में फिर से आरंभ किये। साथ-साथ पार्टी ने जनसमूहों के साथ अपने संबंध सुदृढ़ कर लेने के लिए क़ानूनी संभावनाओं का उपयोग भी बड़े पैमाने पर किया। पार्टी का प्रभाव बराबर बढ़ रहा था। जर्मन राइख़स्टाग के चुनावों में सामाजिक-जनवादियों को दिये गये वोटों की संख्या १८७८ और १८९० के बीच बढ़ते बढ़ते तिगुनी से अधिक हो गयी।

का० मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स ने जर्मन सामाजिक-जनवादियों की बड़ी सहायता की। मज़दूर आंदोलन के बराबर बढ़ते हुए दबाव के कारण १८९० में समाजवादियों के विरुद्ध असाधारण क़ानून रद्द किया गया।—पृष्ठ ४५

[26] देखिये का० मार्क्स के पत्र फ़्रे० एंगेल्स के नाम, ता० २३ जुलाई, १८७७, १ अगस्त, १८७७ और १० सितंबर, १८७९ और फ़्रे० एंगेल्स के पत्र का० मार्क्स के नाम, ता० २० अगस्त तथा ९ सितंबर, १८७९।—पृष्ठ ४६

[27] यह पंक्तियां न० अ० नेक्रासोव की 'दोब्रोल्यूबोव की स्मृति में' शीर्षक कविता से ली गयी हैं।—पृष्ठ ४७

[28] फ़्रे० एंगेल्स, "'जर्मनी में किसान युद्ध' की भूमिका"।—पृष्ठ ५०

[29] यहां फ़्रे० एंगेल्स लिखित 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समालोचना की रूपरेखा' की ओर संकेत है।—पृष्ठ ५३

[30] यहां फ़्रे० एंगेल्स लिखित 'ड्यूहरिंग मत-खंडन। श्री यूजेन ड्यूहरिंग द्वारा विज्ञान में प्रवर्तित क्रांति' की ओर संकेत है।—पृष्ठ ५५

[31] फ़्रे० एंगेल्स की पुस्तक 'समाजवाद : काल्पनिक और वैज्ञानिक' १८९२ में रूस में प्रकाशित हुई तो उसका यह शीर्षक था। यह फ़्रे० एंगेल्स लिखित 'ड्यूहरिंग मत-खंडन' के तीन अध्यायों पर आधारित थी।—पृष्ठ ५५

[32] यहां व्ला० इ० लेनिन का संकेत फ़्रे० एंगेल्स के 'रूसी ज़ारशाही की विदेश नीति' शीर्षक लेख की ओर है। यह लेख 'सोत्सिअल-देमोक्रात' की पहली दो पुस्तकों में 'रूसी ज़ारशाही की विदेश नीति' शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ था।

'सोत्सिअल-देमोक्रात'–१८९० से १८९२ तक विदेशों (लंदन–जेनेवा) में 'श्रम मुक्ति' दल द्वारा प्रकाशित साहित्यिक और राजनीतिक समीक्षा पत्रिका। रूस में मार्क्सवादी विचार फैलाने में इसका बड़ा हाथ रहा। पत्रिका के कुल मिलाकर चार अंक निकले। 'सोत्सिअल-देमोक्रात' के कार्य में ग० व० प्लेखानोव, प० ब० अक्सेलरोद और व० इ० ज़ासुलिच ने सक्रिय भाग लिया।–पृष्ठ ५५

[33] यहां लेनिन का संकेत फ़्रे० एंगेल्स के 'मकानों का सवाल' शीर्षक लेख की ओर है।–पृष्ठ ५५

[34] यहां फ़्रे० एंगेल्स के 'रूस में सामाजिक संबंध' शीर्षक लेख और इस लेख के उपसंहार की ओर संकेत है। ये जेनेवा में १८९४ में प्रकाशित 'रूस के संबंध में फ़्रेडरिक एंगेल्स के विचार' शीर्षक पुस्तक के हिस्से रहे।–पृष्ठ ५५

[35] **'पूंजी' का चतुर्थ खंड**–१८६२-६३ में मार्क्स द्वारा लिखित 'अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत' को एंगेल्स के दृष्टिकोण के अनुसार लेनिन द्वारा दिया गया नाम। 'पूंजी' के द्वितीय खंड की प्रस्तावना में एंगेल्स ने लिखा था: "द्वितीय और तृतीय पुस्तकों में विचारित कितने ही अंशों को हटाने के बाद मैं इस पांडुलिपि ('अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत'–सं०) का आलोचनात्मक भाग 'पूंजी' के चतुर्थ खंड के रूप में प्रकाशित करना चाहता हूं।" पर एंगेल्स की मृत्यु हुई और वह प्रकाशन के लिए चतुर्थ खंड तैयार न कर पाये। यह खंड पहली बार १९०५, १९१० में जर्मन भाषा में प्रकाशित हुआ। प्रकाशन से पहले कार्ल काउत्स्की ने इसका संपादन किया था। इस संस्करण में वैज्ञानिक प्रकाशन से संबंधित मूलभूत सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया था और मार्क्सवाद के कई सिद्धांत ग़लत ढंग से प्रस्तुत किये गये थे।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति का मार्क्सवाद-लेनिनवाद संस्थान १८६२-६३ की पांडुलिपि के अनुसार 'अतिरिक्त मूल्य

के सिद्धांत' ('पूंजी' का चतुर्थ खंड) का नया (रूसी) संस्करण तीन भागों में प्रकाशित कर रहा है।–पृष्ठ ५५

36 यहां फ़्रे० एंगेल्स द्वारा १५ अक्तूबर, १८८४ को इ० फ़० बेकर के नाम लिखे गये पत्र की ओर संकेत है।–पृष्ठ ५६

37 देखिये का० मार्क्स, 'सभा के अस्थायी नियम', 'अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर सभा के सामान्य नियम'; फ़्रे० एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' के १८९० में प्रकाशित जर्मन संस्करण की भूमिका।–पृष्ठ ५७

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन सम्बन्धी आपके विचारों के लिए आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त कर भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। हमारा पता है:

२१, जूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।